जून 2000

अनामा

(शाश्वत संस्कृति, धर्म एवं आध्यात्म का प्रतीक)

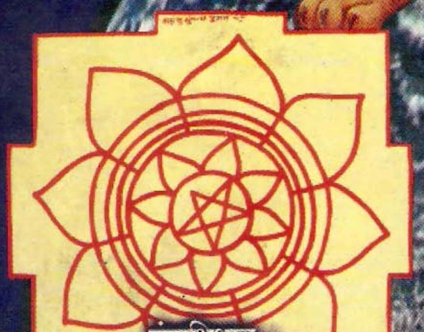

तंत्राभिधान :
असाध्य रोगों से मुक्ति एवं दीर्घायुष्य के लिए :
महामृत्युंजय मंत्र

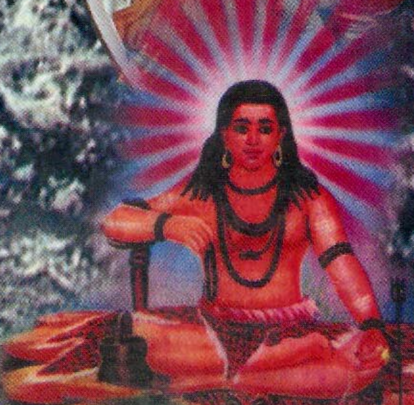

अलौकिक विभूति –
कोलेश्वर महायोगी मत्स्येन्द्रनाथ

ज्योतिष : काल-सर्प योग :
कितना अशुभ, और फिर भी करें क्या ?

श्री धराबंदनाथ अविनाशी. दिल्ली

या श्रीः स्वयं सुकृतिनां भवनेष्वलक्ष्मीः, पापात्मानां कृतधियां हृदयेषु बुद्धिः ।
श्रद्धा सतां कुलजन प्रभवस्य लज्जा, तां त्वां नताः स्म परिपालय देवि विश्वम् ।।

अवधूतमुनि समारभ्य, मानसदास च मध्यगां ।
अस्मदाचार्यपर्यन्तं वन्दे गुरू परम्पराम् ।।

प्रेरक प्रसंग

महाराजाधिराज कौन ?

अवन्ती के राजा भोज सायंकालीन भ्रमण करते हुए घने जंगल में चलते गये। मंद-मंद वासंती बयार का आनन्द लेते हुए राजा अत्यन्त प्रसन्न भाव से विचरण कर रहे थे कि उनकी दृष्टि सिर पर लकड़ियों का गट्ठर उठाये एक लकड़हारे पर जा टिकी जो सामने से लकड़ियाँ काट कर ला रहा था। उसके प्रसन्न एवं आत्मतृप्ति के भाव को राजा ने पढ़ लिया क्योंकि वह आनन्दमग्न होकर कोई गीत गुनगुनाता जा रहा था। इतनी दरिद्रता में भी इतना संतोष, इतनी प्रसन्नता और इतनी निश्चिंतता-राजा सोच में डूब गये कि इसके तृप्त और खुशहाल जीवन का रहस्य जान लेना चाहिये। उन्होंने उसे रोका और पूछा, "भाई तुम कौन हो ?" उसने बताया कि वह महाराजाधिराज है। राजा की भृकुटी तनी, किन्तु तुरंत संयत हो उन्होंने पूछा कि यदि तुम महाराजाधिराज हो तो तुम्हारी आय क्या है और तुम अपनी आय की व्यवस्था किस प्रकार करते हो?

उसने बड़ी निश्चिंतता से बताया कि उसकी आय छः रुपये है और उसमें एक-एक रुपया वह क्रमशः अपने बोहरा, अपने आसामी, अपने मंत्री, अपने अतिथि तथा अपने खजाने को देता है और एक रुपया अपने पर खर्च करता है। राजा की उत्सुकता जगी और उन्होंने इसका पूरा ब्यौरा जानना चाहा।

उसने बताया कि उसको पाल-पोसकर बड़ा करने वाले माता-पिता ही उसके बोहरा हैं और उनकी सेवा के लिये ही वह एक रुपया उनपर खर्च करता है उसकी संतान उसकी आसामी है जिनका भरण-पोषण उसका दायित्व है। जिसके बदले में वे बुढ़ापे में उसका बोझ उठायेंगे- एक रुपया उन पर खर्च करता हूँ। मंत्रणा देना मंत्री का काम है जिससे सारी व्यवस्था ठीक-ठाक चल सके। मेरी सहधर्मिणी के सिवा और कौन मंत्री हो सकता है? एक रुपया उस पर खर्च करता हूँ। मैं नियमित रुप से धन संचय करता हूँ जो मेरा खजाना है। अब उसमें इतनी धन राशि संग्रह कर चुका हूँ कि कठिन समय में काम आ सके। शेष दो रुपये में से एक रुपया मैं अपने पर खर्च करता हूँ तथा एक रुपये में मेरा अतिथि सत्कार भी है क्योंकि अतिथि सेवा भी तो मनुष्य का परम-धर्म है।

फिर लकड़हारे ने राजा को घूर कर देखा जो कुछ सोच रहे थे। उसने कहा-"तुमने व्यर्थ मेरा समय बरबाद किया।" उसने लकड़ियों का गट्ठर उठाया और आगे बढ़ गया। राजा उसकी मस्त चाल और निश्चिंतता के भाव से आत्मविभोर हो सोचने लगे "धन्य हैं वे लोग जो परिश्रम से धन कमाते हैं, आय से अधिक व्यय नहीं करते और एक-एक पैसे का लेखा-जोखा रखते हैं। लकड़हारा जिस निश्चिंतता से जीता है, व्यवस्थित रहता है तथा चिन्ता मुक्त रहता है-सही मायने में वही महाराजाधिराज है।"

***

...सम्पादकीय

प्रिय सुधी पाठक,

आपने 'अनामा' का प्रथम अंक 'मई.२०००' पढ़ा। आपके पत्रों द्वारा हमें उत्साह मिला। आप इसी तरह अपना प्रेम बनाए रखेंगे, ऐसी आशा है। इसे एक संग्रहणीय अंक के रूप में आपने ग्रहण किया, इसके लिए ध न्यवाद। ठीक उसी तरह अनामा का द्वितीय पुष्प आपके हाथ में है। इसमें ज्योतिष, तंत्र-साधना, आयुर्वेद, वेद तथा उपनिषद् एवं अन्यान्य उपयोगी लेख जो अनुभव जन्य तथा अनुसंधान परक हैं इसमें रूपायित हैं। अनुभव पर आधारित होने के कारण ये लेख मानसिक संतुष्टि के साथ-साथ आत्मिक तृप्तिदायक हैं।

वेद तथा उपनिषद् अपौरुषेय हैं- ऐसा नहीं कि इसकी रचना ईश्वर ने की। अपितु, यह एक अनुसंधान परक तथा तथ्य परक अन्वेषणों का संग्रह है जिसे किसी एक ने नहीं किया बल्कि अनेक ऋषियों, मुनियों और मनीषियों ने अपने अथक परिश्रम द्वारा प्राप्त किया। ये वे ही लोग हैं जिन्हें आज की भाषा में वैज्ञानिक एवं अनुसंधान कर्त्ता कहा जाता है। फलित ज्योतिष में अनेक योगों का वर्णन मिलता है, जिसमें कालसर्प-योग को ज्योतिर्विद् जातक के लिए अच्छा नहीं मानते। किन्तु, यह सर्वथा सत्य नहीं है। इस योग में जन्मे व्यक्ति भी अपना जीवन जीते हैं, लेकिन जो उनके जीवन में उठा-पटक है उसे शांत करने के लिए कुछ उपाय दिए गए हैं।

कामाख्या शक्तिपीठ का जीवंत वर्णन भी आपको अच्छा लगेगा, क्योंकि इस पीठ से जुड़े आधुनिक तथा पौराणिक दोनों तरह के तथ्यों का वर्णन सटीक है। कौलेश्वर महायोगी श्री मत्स्येन्द्रनाथ का जीवन चरित एवं नाथों, सिद्धों तथा कौलों से जुड़े तथ्य एवं हठयोगादि की पूरी जानकारी छोटे से लेख में गागर-में सागर के सामान है।

जहां कुंडलिनी एवं तंत्र-साधना का व्याख्यात्मक वर्णन एवं इसमें जीवन को और सार्थक बनाने का पूरा प्रयोगात्मक विवरण है; वहीं दुर्गा सप्तशती में आए कवच का पाठ एवं उसकी विधिवत् पूजार्चा की बात भी आती है। आधुनिक जीवन में तनाव प्रत्येक व्यक्ति के साथ है, अतः उसे कम कर अपने जीवन को शान्तिमय एवं सुखमय बनाने का भी वर्णन है। अन्यान्य प्रेरक लेख भी आपकी मानसिक संतुष्टि प्रदान करने में उपादेय रहेंगे।

तुलसीदास कहते हैं-'ईश्वर अंस जीव अविनासी'। सभी ईश्वर के अंश हैं और जीव (आत्मा) अविनाशी है। फिर वह पुरुष कौन है, जिसने वेद तथा उपनिषद् रचे। छान्दोग्योपनिषद् में आया है-'सर्वंखल्विदं ब्रह्मं'। ब्रह्म हर जगह व्याप्त है फिर उसे वेदों की रचना करने की जरूरत क्यों है ? ईशोपनिषद् में आया है- 'ईशावासमिदं सवम्'। जब ईश्वर सब जगह वास करता है तो वह पुस्तकें क्यों लिखेगा ? किन्तु, ऐसा है नहीं। ईश्वर ने वेद-उपनिषद् नहीं रचे, किन्तु जब तक लेखन का आविष्कार नहीं था तब तक सृष्टि में ये रचनाएं 'श्रुति' के रूप में पीढ़ी-दर-पीढ़ी आती रहीं और उनपर अनवरत अनुसंधान होते रहे। कालान्तर में लिपि के आविष्कार के बाद उन्हें ग्रन्थाकार रूप में लिपिबद्ध कर लिया गया।

सुधी पाठकों से निवेदन है कि अपने पत्रों द्वारा हमारा मार्ग-दर्शन करते रहें। यदि कोई अनुभवपरक या अनुसंधान परक आप लेख भेज सकते हैं, तो उसका स्वागत है। हम उसे पत्रिका में स्थान देंगे। प्रकाशन में कई कारणों से विलम्ब के लिए हम क्षमा-प्रार्थी हैं। आप अपना सहयोग बनाए रखेंगे।

इसी अभीप्सा के साथ।

आपका

(भै० प्रपन्नानंद नाथ)

अनामा

(शिवाशिव समूह की मुख्य पत्रिका)

अंक-२, वर्ष-१, वैशाख-ज्येष्ठ-२०५७, जून-२०००

संस्थापक-संरक्षक एवं उत्प्रेरक

अवधूत कृपानंदनाथ

परामर्शी : **भैरव भैरवानंदनाथ**

संपादक मंडल :

भैरव डॉ० प्रबुद्धानंदनाथ-*प्रमुख कार्यकारी संपादक*

भैरव धरानंदनाथ

भैरव सच्चिदानंदनाथ

भैरव प्रपन्नानंदनाथ

भैरवी माँ मंजूश्री

संपादकीय सूत्र : **भैरव डॉ० प्रबुद्धानंदनाथ**

प्रोफेसर्स कॉलोनी, आरा-८०३

दूरभाष : ०६१८२-२६८५६

शिवाशिव समूहके लिए **भैरव धरानंदनाथ** द्वारा

प्रकाशित एवं**चंदू प्रेस**, दिल्ली द्वारा मुद्रित

लेज़र टाईपसैटिंग, कलर प्रोसेसिंग :

अभिनव कम्प्यूटेक

दूरभाष - ०११-२१८३६८५

सर्वाधिकार सुरक्षित, संपर्क सूत्र

©कमला मणि उपाध्याय

राजरोशन भवन, अलकापुरी, रातू रोड़, रांची-८३४००१

दूरभाष : ०६५१-३०५८७४

ई-मेल :**shivashiv@hotmail.com**

मूल्य :	(भारत में)	**रू.12/-**	(वार्षिक)	**रू.140/-**
	(विदेश में)	**1$**	(वार्षिक)	**10$**

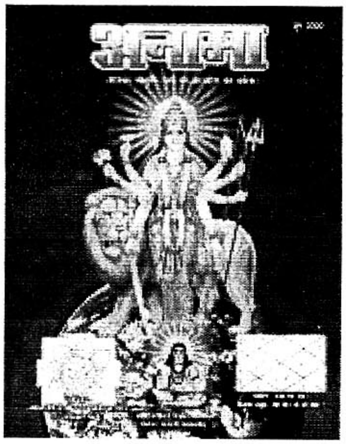

विषय सूची

१. प्रेरक प्रसंग –महाराजा कौन 1

२. अलौकिक विभूति –
कौलेश्वर महायोगी मत्स्येन्द्रनाथ ४

३. प्रकीर्ण :
दुर्गासप्तशती : कवच-सिद्धि एवं उसका उपयोग १२

४. तांत्रिक प्रक्रियाः
कुंडलिनी और तंत्र साधना १४

५. वेद-वातायन :
वेदोपनिषद् की अपौरुषेयता का तात्पर्य १८

६. तंत्राभिधान :
असाध्य रोगों से मुक्ति एवं दीर्घायुष्य के लिए : महामृत्युंजय मंत्र २२

७. आध्यात्म के स्रोत :
तीर्थ, कामाख्याः गुह्यतम सिद्धपीठ २७

८. ज्योतिष : काल-सर्प योग :
कितना अशुभ, और फिर भी करें क्या ? ३४

६. आयुर्वेद : तनाव : महाव्याधि ३६

१०. लौकिक तंत्र मंत्र : कुछ सिद्ध योग और मंत्र ४२

११.जीवन शाश्वत है :मृत्यु जीवन का अंत नहीं ४३

१२.शिवा-शिव समूह समाचार : अनामा, जून ४७

१३. गुरु वचन : स्थापना पर्व का संदेश ४६

विशेष : सभी इच्छुक विद्वान सज्जनों से आग्रह है कि आध्यात्मिक लेख निःशुल्क भेजकर हमारी पत्रिका के श्रेष्ठ प्रकाशन में हमारा सहयोग करें । इसमें मात्र लेख ही प्रकाश्य है ।

चेतावनी : इस पत्रिका में दिए गए यंत्र तथा उनकी साधना प्रक्रिया प्रामाणिक तथा अनुभूत है, किन्तु उनकी साधना किसी सद्गुरु या योग्य तांत्रिक साधक की देख-रेख में करें अन्यथा असावधानी तथा त्रुटिवश हुए परिणाम के लिए संपादक मंडल तथा लेखक उत्तरदायी नहीं होंगे ।

कौलेश्वर महायोगी मत्स्येन्द्रनाथ

नाथसिद्धों में मत्स्येन्द्रनाथ का जो अन्यतम स्थान एवं महत्व है कौलमत में भी वे उसी प्रकार महार्थ एवं सर्वोच्च स्थान प्राप्त है। वे कौलमत के आदि प्रवर्तक हैं और उन्होंने जो मत एवं सिद्धान्त विनिर्मित किये कौलमत की एक स्वतंत्र शाखा का सूत्रपात हुआ जिसे योगिनीकौल के नाम से साधक समाज में समादृत है। नवनाथों में वे परिगणित हैं तो योगिनीकौल मत के प्रर्वतक भी। कौलाचार के रूप में जो जघन्य, जुगुप्सित और निंद्य आचरण का प्रचलन बौद्धमत के प्रभाव से अपने चरम पर था उसे परिमार्जित एवं संशोधित कर उन्होंने कौलमत को जिन उच्चादर्शों की पीठिका प्रदान की उसके फलस्वरूप ही तंत्रागम में सप्ताचार में इसे सर्वश्रेष्ठ घोषित किया गया।

'कौलाचार परतरोनहि'-- कौलाचार को सर्वश्रेष्ठ धर्माचरण के रूप में मान्यता तो मिली है, किन्तु आध्यात्म पथ के सुदृढ़ सिद्धान्तों पर अवस्थित कौलाचार, सर्वाधिक देदीप्यमान पथ-प्रदीप भी बन गया। मिथ्याचार का अपवर्जन कर कौलमत को परिशुद्ध एवं परिष्कृत करने का जो प्रयास योगेश्वर मत्स्येन्द्रनाथ ने किया वह आध्यात्म के इतिहास में सर्वविदित है। इसीलिये, उन्हें कौलमत के आदिप्रर्वतक के रूप में प्रतिष्ठित किया गया यद्यपि कौलमत शिवप्रवर्तक पंथ है तथा इसके मूलसूत्र शिवप्रोक्त हैं। उन्हीं सूत्रों को जिन्हें परवर्ती कामलोलुप, परनारीरत, मद्यप और पाखंडियों ने धर्म के नाम पर उलझा दिया था तथा अपने कुतर्कों और आडम्बर जनित वाग्जालों से समाज को धर्म के नाम पर पतन के गर्त में धकेला था, योगेश्वर मच्छेन्दर नाथ ने सुलझाकर, धो-पोंछकर उन्हें दिव्य रूप में प्रस्तुत किया। कौलाचार से श्रेष्ठ आचार नहीं और कौलमत से श्रेष्ठ कोई मत नहीं, सिद्धान्त नहीं, ऐसी सुदृढ नींव पर, इस के भव्यभवन को स्थापित किया योगेश्वर मत्स्येन्द्रनाथ ने। उन्होनें तांत्रिक साधनापथ को योगयुक्त कर शाक्तपरक योगिनी कौलमत का प्रवर्तन कर शिव-शक्ति के सामरस्य को गुंफित कर सिद्धमत का पोषण किया तथा तंत्रमत को एक नई दिशा, नया आयाम प्रदान किया। शिव (अकुल)-शक्ति (कुल) दोनों ही शाश्वत, अप्रमेय, आदि और अनन्त हैं तथा सभी अवस्थाओं में दोनों अभिन्न रूप से विद्यमान हैं इसी सिद्धान्त पर नाथपंथ और कौलमत को गुंफित करने के कारण ही दोनों ही मत के प्रर्वतकों में उनका नाम आदरपूर्वक लिया जाता है। उनके शिष्य गोरखनाथ ने षडंग योग - आसन, प्रणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि को नाथ संप्रदाय का मेरूदंड घोषित किया वहीं बौद्धमत के अनात्मवाद के विवर्त से ग्रस्त वैदिक विचार और आध्यात्म चिंतन का सिद्धामृत मार्ग से समुद्धार कर आत्मा में परमात्मा का, जीव से शिव का शाश्वत योग सिद्ध किया। इस अकाल योग पुरुष ने सिद्धाचार को नाथ संप्रदाय को प्रदान किया तो शाक्त संप्रदाय को कौलाचार के नवनीत को अपनी समग्र साधनाजनित अनुभूतियों को मथकर प्रदान किया तथा एक श्लोक में अखिल कौलमत को सूत्र-निबद्ध कर दिया :-

अक्रियैव परापूजा मौनमेव परोजपः।

योगेश्वर महासिद्ध हैं और अपने सिद्धपात्र में कालदंड का खंडन कर निरन्तर ब्रह्मांड में विचरण करते हुए योग जिज्ञासु तथा शाक्त साधकों को अपनी कृपा से मार्गदर्शन भी करते रहते हैं। हठयोग के अक्षुण्ण प्रभाव से उन्होंने अपने स्वदेह का आत्मीकरण चिन्मय परमात्मा तत्व से रसायनीकरण कर लिया है। इन नाथ योग सिद्धों के संबंध में हठयोग प्रदीपिका में कहा गया है :-

इहयादयो महासिद्धाः हठयोगप्रभावतः।
खंडमित्वा कालदंडं, ब्रह्मांडे विचरन्तिते।।

(हठ० १/६)

योगेश्वर मत्स्येन्द्रनाथं विलक्षण एवं अप्रतिम आध्यात्मिक विभूति हैं। उन्होंने कौलमार्ग तथा योगमार्ग जैसे विरोधी मतों का सूचीकरण कर भारतीय संस्कृति एवं आध्यात्म को एक नई दिशा दी और उनका योगदान इतना

विशिष्ट रहा कि तत्कालीन समाज में वे भगवान शिव के अवतार के रूप में समादृत किये गये। एक ओर वे योग-विभूति थे तो दूसरी ओर कौलेश्वर। योग की क्लिष्टता का सरलीकरण कर उसे कौलाचार के पथ पर आरूढ़ करा कर योग की नई भूमिका लेकर आये और योग की नीरसता को कौलाचार के आनंद के साथ समन्वय स्थापित कर वे एक साथ ही योगेश्वर एवं कौलेश्वर कहे गये। दोनो ही आध्यात्मिक विद्या के आदि आचार्यों में, आदि प्रवर्तकों में महायोगी परिगणित हुए। कौलमार्ग की दुष्प्रवृत्तियों का योग से दमन कर उन्होंने कौलमत को लोकरंजन के पथ पर आरूढ़ किया। कौलमत का चरम विकास दिव्यभाव में परिणत हुआ और कौलेश्वर मत्स्येन्द्रनाथ इसके आदि प्रवर्तक हुए तथा नाथपंथ में दिव्यशक्ति के उन्मेष का सारा श्रेय उन्हें ही दिया जा सकता है। उनकी विशिष्टता है कि नाथपंथ आदिनाथ शिव के उत्तराधिकारी के रूप में इसके प्रथम आचार्य हैं उसी प्रकार शिव प्रोक्त कौलमत के भी वे आदि आचार्य हैं। नाथ परंपरा की तरह कौल परम्परा में भी उनका वही स्थान है। वे भगवान् शिव के कौलज्ञान के उत्तराधिकारी पुरुष ही नहीं, इसके सिद्ध आचार्य भी हैं। नेपाल की जनश्रुति में वे अवलोकितेश्वर के अवतार के रूप में समादृत हैं। नवनाथ परम्परा में इन्हें मायास्वरूप करूणामय कहा गया है। नया स्वरूप करूणामय मत्स्येन्द्रनाथ ने अपनी भक्ति की जो अट्टालिका निर्मित की वह नाथ योग एवं कौलमत के सिद्धान्तों का मणिकांचन योग प्रस्तुत करता है जिसे हम सिद्ध मार्ग या सिद्धामृत मार्ग के नाम से जानते हैं।

कौलयोग मत के प्रवर्तक महायोगी श्री मत्स्येन्द्रनाथ आध्यात्म सागर के प्रकाश स्तंभ हैं जो भूले भटके को सही मार्ग पर लाते रहेंगे तथा जो तत्वानुसंधान में रत हैं वे अपने सही मार्ग को पहचान कर ठीक दिशा में बढ़ते रहेंगे। उनके द्वारा युग-युग से असंख्य प्राणियों को गुरु तत्व का ज्ञान हुआ तथा कौलयोग का महाज्ञान प्राप्त हुआ जिससे इस दुष्कर भव-सागर को पारकर नीरव प्राप्त कर पूर्ण काम निरंजन स्वरूप हो गये। अलौकिक-विभूति महायोगी श्री मत्स्येन्द्रनाथ कई दृष्टिकोण से भारतीय संस्कृति एवं आध्यात्म के शिखर पुरुष के रूप में सार्वकालिक एवं सार्वदेशिक महिमामंडित बने रहेंगे। वे शाश्वत् पुरुष हैं, शिव हैं।

उनके नाम, जन्म स्थान की गवेषणा एक कठिन कार्य है। उनके जीवन और चरित्र के संबंध में जो भी जानकारी हमें उपलब्ध है वह प्रचीन जनश्रुतियों, दंतकथाओं या फिर नाथ-परम्परा में प्रचलित 'आख्यायिकाओं' के आधार पर ही है। नाथ-संप्रदाय में जो साहित्य तथा दशवीं शती से पूर्व रचित अनेकानेक तंत्रग्रंथों और दार्शनिक एवं सैद्धान्तिक रचनाओं के साक्ष्य से यह स्पष्ट है कि उन्होंने हिमालय की उपत्यका तथा कामरूप में योगाभ्यास तथा कौल योगिनी मत के अनुसार साधना की थी।

'नित्याध्निक तिलकं' नामक पुस्तक में उनके विषय में लिखा है कि श्री मत्स्येन्द्रनाथ का पूर्व नाम विष्णुशर्मा था तथा जन्मभूमि वारणा थी। वे ब्राह्मण कुल में उत्पन्न उसके तथा उनका चर्या नाम गौड़ीश देव, पूजानाम पिप्पलीश देव तथा गुप्तनाम भैरवानंदनाथ था। उनके कीर्तिनाम वीरानंदनाथ, इन्द्रानंद देव तथा मत्स्येन्द्रनाथ थे तथा उनकी शक्ति ललिता भैरवी अम्वा पापू थी।

इन नामों से यह स्पष्ट हो जाता है कि वे कौलाचार परक साधक थे तथा उनका सिद्धमत का योगी होना तो निर्विवाद है। उनका कुलाचार शक्ति (कुल) से शिव (अकुल) के सामरस्य सिद्धान्त का पोषक था। उनके जन्म स्थान के बारे में कहा जाता है कि बंगाल-आसाम के संधिस्थल पर चन्द्रगिरि नामक स्थान है। इसे ही चन्द्र द्वीप भी कहा गया है जो प्राकृतिक सुषमा से आच्छादित पर्वतीय वन्यप्रदेश था जो कामरूप के समीपवर्ती कहीं था। ऐसा लगता है कि 'नित्याहिनक तिलकम्' का वारणा ही चन्द्रद्वीप अथवा चन्द्रगिरि है जो ब्रह्मपुत्र नदी के किसी द्वीपाकार भूमि पर कामरूप के समीप था। शक्तिपीठ कामरूप के वातावरण से सिक्त तांत्रिक आचार-विचार और परम्परा से पोषित चन्द्रगिरि या चन्द्रद्वीप ही कौलेश्वर मत्स्येन्द्रनाथ की निस्संदेह जन्मभूमि रही है। जिसका पर्याप्त प्रभाव उनके जीवन पर छाया रहा और नाथपंथ का सिद्धमत या सिद्धामृत मत योगाचार संलिष्ट कौलमत का परिपोषक ही है। शक्ति से ही शिव प्राणवान हैं मत्स्येन्द्रनाथ के सिद्ध मत की मूल पीठिका है।

तपश्चर्या में जाने से पूर्व श्री मत्स्येन्द्रनाथ ने भगवान शिव से महाज्ञान प्राप्त किया। कुलागम के समुद्धार में उनका अप्रतिम योगदान है जो लुप्तप्राय हो चला था तथा उसके नाम पर इन्द्रिय लोलुपता का प्राधान्य हो गया था। उनकी तपस्या से प्रसन्न होकर भगवान् शिव ने उन्हें अपना स्वरूप प्रदान किया तथा सिद्धामृत मार्ग का प्रवर्तन एवं पोषण उनके द्वारा किया गया। यही उनकी ऐतिहासिक गरिमा है। कुलागम शास्त्र का प्रर्वतन भी उनकी एक विशिष्ट देन है। इसके संबंध में अनेक संदर्भ थोड़े परिवर्तन के साथ कई ग्रंथों में मिलते हैं। ऐसी अवधारणा है कि कार्तिकेय ने कुलागम शास्त्र को समुद्र में फेंक दिया था। साक्षात् भैरव अर्थात शिव ने मत्स्येन्द्रनाथ के रूप में अवतरित होकर उस मत्स्य का उदर विदीर्ण कर कुलागम का उद्धार किया जिसने उसका भक्षण कर लिया था। इससे स्पष्ट संकेत मिलता है कि वामाचारी अमर्यादित साधकों से लांछित कुलागम को उन्होंने स्वच्छ तथा मर्यादित पवित्र पीठिका प्रदान की। विस्तार से इसकी कथा इस प्रकार है कि भगवती पार्वती को शिव के गले में मुंडमाला धारण करने से बड़ा आश्चर्य हुआ। देवर्षि नारद ने उन्हें बताया कि ये मुंड उनके पूर्व जन्मों के हैं जिन्हें शिव ने माला के रूप में पहन रखा है। इसका कारण पूछने पर महादेव ने इस रहस्य का उदघाटन करने के लिये निर्जन प्रान्त में एकान्त में बताने की बात कही। एक दिन इस महाज्ञान को बताने के लिये शिव ने स्थान चुना। वे पार्वती के साथ एक डोंगी में सवार होकर समुद्र में गये और इस अमर कथा किंवा महाज्ञान को बताने लगे। अपनी अमरता तथा देवी के अनेक जन्म धारण करने की मनोरम कथा सुनाने लगे। इस महाज्ञान का श्रवण करते-करते देवी को नींद आ गई। किन्तु, नाव के नीचे छिपे मत्स्येन्द्रनाथ हुंकारी भरने लगे। जब उनकी निद्रा टूटी तो उन्होंने बताया कि अमर-कथा सुनते-सुनते उन्हें नींद आ गई और पूरी कथा उन्होंने सुनी ही नहीं। मगर हुंकार भरने का रहस्य जब शिव को मालूम हुआ तो उन्होंने मत्स्येन्द्रनाथ को शाप दे दिया कि वे किंचित् काल तक उन महायोग अर्थात् महाज्ञान को भूल जायेंगे। यह भी जनश्रुति है कि कविनारायण ने मत्स्येन्द्रनाथ के रूप में गंडान्त योग में किसी ब्राह्मण के घर जन्म लिया था। शास्त्रानुसार उस ब्राह्मण ने उन्हें समुद्र में फेंक दिया। एक मछली उन्हें निगल गई और बारह वर्षों तक उन्हें अपने गर्भ में धारण किये रही। उसी मत्स्य के गर्भ में मत्स्येन्द्रनाथ ने महाज्ञान का श्रवण किया था। श्रीमद्भागवत् के ऋषभ देव के पुत्र कविनारायण को ही योगी सम्प्रदाय। विष्कृत ग्रंथ के अनुसार मत्स्येन्द्रनाथ कहा गया है। इस आख्यान का सीधा तात्पर्य है कि शिव की कृपा के फलस्वरूप मत्स्येन्द्रनाथ महायोगी तथा महासिद्ध बनें। उन्होंने महाज्ञान श्रवण किया किन्तु, शापवश उसे भूल भी गये जिसके फलस्वरूप कदलीवन में विहार करने के प्रसंग में उनके कौलाचार परक जीवन का वर्णन मिलता है। भगवान शिव के अनुग्रह के कारण ही महाज्ञान की स्मृति गोरखनाथ के द्वारा कराये जाने पर उन्हें महाज्ञान की स्मृति हुई और वे सिद्धमत के योगाचार से सम्पन्न हो गये। उन्होंने कौलज्ञान से योगमहाज्ञान का समन्वय किया, योग साधना में अकुल से कुल, शिव का शक्ति से सामरस्य स्थापित किया।

मत्स्येन्द्रनाथ द्वारा महाज्ञान के श्रवण का उपर्युक्त आख्यान नारद पुराण के उत्तर भाग के ६६वें अध्याय के ६-२५ श्लोकों में दिया गया है। महेश्वर ने मणिप्रदीप्त सप्तशृंग पर भगवती उमा को तत्व ज्ञान का उपदेश दिया था। भगवती के निद्राभिभूत होने पर मत्स्येन्द्रनाथ ने वह तत्वोपदेश सुना। मत्स्येन्द्रनाथ को भगवान शिव ने अपनी गोद में बिठाकर उनका मुख चूमा और अपना पुत्र कहा तथा सिद्धनाथ कहा। उन सिद्धनाथ मत्स्येन्द्रनाथ का ध्यान कर मनुष्य का मनोरथ सफल होता है -

सुतोममायं किल मत्स्यन्द्रनाथो विज्ञानतत्वोऽखिलसिद्धनाथः।

(ना० पु० उत्तर; ६६/६५)

वहीं पर कहा गया है कि पार्वती पुत्र मत्स्येन्द्रनाथ (सिद्धनाथ) कामाख्या में तपस्यारत होकर स्थित हैं। सत्ययुग, त्रेता और द्वापर में वे प्रत्यक्ष रहते हैं किन्तु कलियुग में वे अदृश्य रहते हैं।कामाख्या में उग्रतप द्वारा उनका प्रत्यक्षीकरण भी संभव है। वे विज्ञान के पारंगत योगी हैं।

तत्रास्ते पार्वतीपुत्रः सिद्धनाथो वरानने
उग्रेतपसि लोके सः प्रेक्ष्यते कदाचन्।
कृतत्रेताद्वापरेषुप्रत्यक्षदृश्यतेऽखिलैः।।
स मत्स्यनाथः किलतत्र संस्थो
विज्ञान पारंगत एव भद्रे।।

(ना० पु०, उ० ६६/६,७१३)

ज्ञानेश्वर के गीता भाष्य ज्ञानेश्वरी के '१८वें अध्याय' में १७२१ से १७६५ ओनियों में नादरपुराण की इस आख्यायिका की प्रामाणिकता का उल्लेख मिलता है कि क्षीर समुद्र में भगवान् शिव ने भगवती पार्वती को जो श्रुतिगोचर ज्ञानोपदेश प्रदान किया था, वह क्षीर समुद्र की तरंगों से किसी मत्स्य के उदरस्थ मत्स्येन्द्रनाथ ने प्राप्त कर लिया। अचल समाधि की युक्ति उनके हाथ लगी. जिसे उन्होंने अपने शिष्य गोरक्षनाथ को दिया-

क्षीरसिंधुपरिसर्ती। शक्तिच्यां कर्ण कुहरीं।
नैणां के श्रीत्रिपुरारी। सांगितले जें।
ते क्षीर कवलोका आंतु। मकरोदरी गुप्तु।
होता तया चा हातु।
मग समाधि अप्यत्यया भोगावीवासनायथा।
ते मुद्रा श्री गोरक्षराया। दिकलीं मीनी।

(ज्ञानेश्वरी अध्याय - १८)

महाज्ञान श्रवणोपरान्त श्री मत्स्येन्द्रनाथ ने कठोर तपश्चर्या का जीवन अपनाया, जिससे प्रसन्न होकर भगवान शिव ने उन्हें अपना स्वरूप प्रदान किया तथा उन्हें ज्ञान-विज्ञान का गुप्त-ज्ञान प्रदान किया। भगवान् शिव के कानों में कुण्डल देख उन्हें प्राप्त करने के लिए श्री मत्स्येन्द्रनाथ ने पुनः कठोर तप करना प्रारम्भ किया। कनफटा योगी की परम्परा अर्थात् कान फाड़कर कुण्डल धारण करने की प्रथा नाथ योगियों में है, उसका प्रारम्भ श्री मत्स्येन्द्रनाथ जी ने ही किया। 'तंत्रालोक' के टीकाकर जयरथ ने योग सम्प्रदाय के परमाचार्य श्री मत्स्येन्द्रनाथ को ही कौल मत के प्रवर्तक परमाचार्य के रूप में दिखाया है। दो प्राचीन श्लोकों को उद्धृत कर इस तथ्य पर प्रकाश डाला है कि सकल शास्त्रोद्धारक श्री मत्स्येन्द्रनाथ ने कामरूप महापीठ में जो मछन्दर नाम से प्रसिद्ध थे, शिव से कौल योग पाया था-

भैरव्या भैरवात् प्राप्तं योगं व्याप्य ततः प्रिये।
तत्सकाशाक्तु सिद्धेन मीनाख्येन वरानने।।
कामरूपे महापीठे मच्छन्देन महात्मना।।

(तंत्रालोक टीका पृष्ठ-२४)

एक ही व्यक्ति मीननाथ या मच्छन्द है। जयरथ की स्वीकृति है कि-

स च (मच्छन्दः) सकल कुलशास्त्रावतारक तया प्रसिद्धः।

कौलज्ञान निर्णय में उन्हें योगिनी कौलज्ञान का अवतारक कहा गया है।

यदावतारितं ज्ञानं कामरूपीत्वयामयि।

(कौलज्ञान निर्णय १६/२१)

यह बात तथ्यपरक है कि श्री मत्स्येन्द्रनाथ ने महाशक्तिपीठ कामाख्या में कठोर तप कर शिव से योग महाज्ञान प्राप्त किया तथा उनसे निजस्वरूप का वरदान भी प्राप्त किया। जिसका महत्व भी उन्होंने शिव मुख से श्रवण किया। योगी सम्प्रदाय विष्कृत ग्रन्थ में वर्णन है कि महादेव जी बाल तपस्वी श्री मत्स्येन्द्रनाथ के साथ कामरूप से

कैलाश आये तथा प्रसन्न होकर श्री मत्स्येन्द्रनाथ जी से वर मांगने को कहा। श्री मत्स्येन्द्रनाथ जी के निज स्वरूप का वरदान मांगने पर भगवान शिव ने उनके मस्तक पर विभूति डालकर भस्म-स्नान का महत्व समझाया। उन्होंने बताया कि यह भस्म मृत्तिका है। जिसे धारण करने का अभिप्राय है कि योगी अपने को मान-अपमान से परे रहकर अपने को धरती की तरह जड़ समझे। अग्नि के संयोग से ही काष्ठ भस्म बनता है तो काष्ठ की तरह ज्ञानाग्नि से दृश्य होकर योगी अपनी कठोरता छोड़ दे। इसके बाद शिव ने उन्हें जल-स्नान कराया तथा बताया कि जिस प्रकार मेघ समान रूप से तटस्थ रहकर सबके लिए जल वर्षण करता है, उसी प्रकार सभी प्राणियों के प्रति योगी को

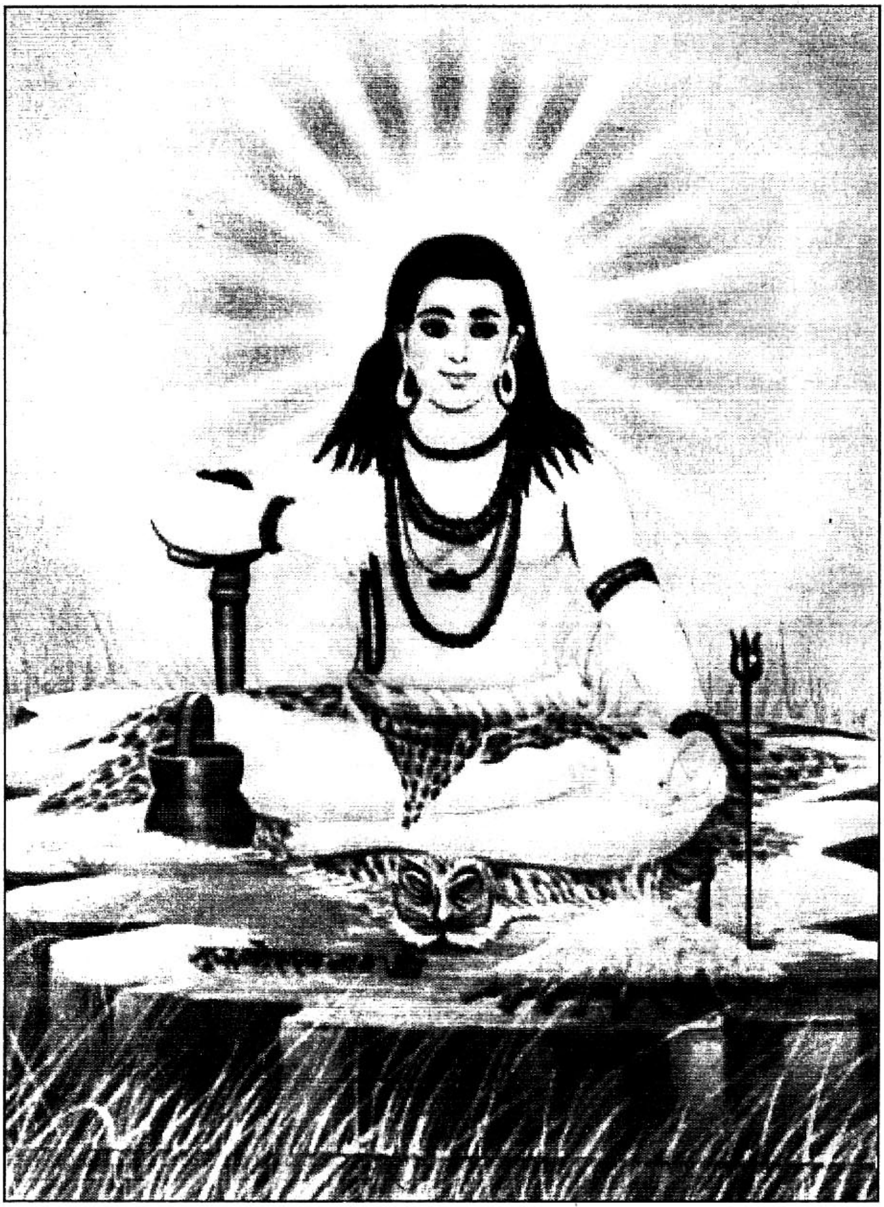

निष्पक्ष रहना चाहिए तथा समान व्यवहार करना चाहिए। जल तप्त होकर भी अपना स्वभाव नहीं छोड़ता उसी प्रकार योगी को अपना स्वभाव नहीं छोड़ना चाहिए। नाद-जनेऊ जो ऊर्ण निर्मित होता है, को पहनाकर बताया कि योगी की उत्पत्ति नाद से होती है। इस नाद को धारण कर योगी को संसार आदिकों से अपने को भिन्न समझना चाहिए अन्यथा पतन में गिरना पड़ता है, मायामोह के गर्त में गिरना पड़ता है। इसके बाद महादेव जी ने श्री मत्स्येन्द्रनाथ जी को कुण्डलादि यौगिक चिह्न प्रदान किया।

शिव के द्वारा स्वरूपदान का महत्व इतना ही है कि श्री मत्स्येन्द्रनाथ जी शैव योगी थे तथा उनका सम्प्रदाय योगप्रधान है। तपस्या के परिणामतः शैव योग में पारंगतता प्राप्त कर भी वे अपने आपको कामाख्या शक्तिपीठ के तांत्रिक साधनागत प्रभाव से मुक्त नहीं करा सके। उन्होंने अकुल योग में सकुल मार्ग का शक्त्युपासना तथा कुण्डलिनी को जागृत करने की साधना का आश्रय लिया तथा योगिनी कौल मत की आधारशिला रखी। अकुल-कुल सामरस्य के सिद्धान्त का प्रतिपादन अपने ग्रन्थ 'कौलज्ञान निर्णय' में किया। उन्होंने शैवयोग तथा कौलयोग के एकीकरण का जो आधार स्थापित किया, वह नितान्त निगमागम सम्मत होने के कारण महाज्ञान के रूप में प्रतिष्ठित हुआ। दुराचार, पाखण्ड, लोक विरुद्ध आचरण तथा निंद्य आचरण को

कौलाचार की आड़ में पोषण करने वाले सुरा-सुन्दरी तथा भोगवाद में लिप्त औघड़ पंथ को कीचड़ से निकालकर आध्यात्म के मूल तत्वों तथा भक्ति के परमानन्द का पथ प्रशस्त करते हुए महायोगी श्री मत्स्येन्द्रनाथ ने शैवयोग की आधारशिला रखी। कौलमत और उसकी प्रामाणिकता पर अपनी मुहर लगा दी। दिव्य पथ पर आरूढ़ होकर कौलाचार योगिनी कौल से अभिहित किया गया जिसके आदि प्रर्वतक तथा परमाचार्य बने कौलेश्वर महायोगी श्री मत्स्येन्द्रनाथ जिनकी विरचित रचना 'कौलज्ञान निर्णय' का महत्व साधक समाज में सुविदित है। योगेश्वर श्री मत्स्येन्द्रनाथ ने भोग में योग का संरक्षण कर योगिनी कौल का प्रवर्तन किया ही साथ ही योग के शुष्क ज्ञान को कौलज्ञान से संयुक्त कर उसमें सरसता का समावेश कर महाज्ञान का उन्मेष भी कर दिया। रमणी राज्य में उनके विहार-विलास के प्रसंग को लेकर उन्हें कौल कहना अनुपयुक्त है, युक्ति संगत है उन्हें कौलयोगी से अभिहित करना। अनेक संदर्भों से यह स्पष्ट को जाता है कि कौलेश्वर श्री मत्स्येन्द्रनाथ ने कुछ काल तक कदलीवन में योगिनियों से विहार-विलास में, उनकी माया में आसक्त रहकर तथा सिद्धमत का परित्याग कर दिया था, किन्तु यह भ्रम है। भोग में भी योग का समावेश किया जा सकता है इसका ज्वलंत प्रमाण उन्होंने अपने जीवन में दिया। उनके कौलज्ञान पर 'कौलज्ञान-निर्णय' जो साधना परक शास्त्र है वह कामरूप की योगिनियों के घर-घर में विद्यमान था। श्री मत्स्येन्द्रनाथ ने कौलज्ञान को कामरूप में अवतरित किया। महारानी मंगला और कमला के साहचर्य में कदलीवन में रमण करते हुए वे योगज्ञान को विस्मृत कर बैठे। आकाश मार्ग से गमन करते हुए सिद्ध कृष्णपाद ने उन्हें इस तथ्य से परिचित कराया कि उनके गुरु कदलीवन में सोलह सौ सेविकाओं द्वारा सेवित महारानी कमला और पिंगला के मोहपाश में आबद्ध होकर महायोग भूलकर कामयोग में लीन हैं। श्री गोरखनाथ ऐसा सुनकर अपने गुरु श्री मत्स्येन्द्रनाथ को मुक्त करने नर्तकी के वेश में त्रिया राज्य में प्रवेश किया क्योंकि त्रियाराज्य में पुरुष का प्रवेश निषिद्ध था। श्री गोरखनाथ ने राजदरबार में मृदंग ध्वनि की तथा अपने सिद्ध मत का अपने गुरुदेव को स्मरण कराया 'जाग मछन्दर गोरख आया' की मृदंग ध्वनि से उन्हें मोहपाश से मुक्त कराया।

नेपाल में योगेश्वर श्री मत्स्येन्द्रनाथ का महत्व एवं आदर भाव वर्णनातीत है। श्री मत्स्येन्द्र यात्रा उत्सव नेपाली जीवन का एक विशिष्ट पर्व है। उन्होंने नेपाल को योगामृत का स्वाद चखाया। नेपाल का गोरखा राज्य महीन्दरनाथ और उनके शिष्य गोरखनाथ के प्रति अगाध श्रद्धा एवं प्रगाढ़ भक्ति का प्रतीक है। श्री गोरखनाथ से शापित नेपाल में बारह वर्षों तक दुर्भिक्ष छाया रहा जब नेपाल नरेश ने श्री मत्स्येन्द्रनाथ के सम्मान में यात्रा-उत्सव का आयोजन किया तो उससे प्रसन्न होकर श्री गोरखनाथ ने नेपाल को अकाल मुक्त कर दिया। नेपाल में वे अवलोकितेश्वर के रूप में पूज्य हैं। नेपाल की भक्ति श्री मत्स्येन्द्रनाथ के प्रति उनकी जनानुभूति है। महायोगी के प्रति उनकी गहन श्रद्धायुक्त भक्तिभाव की उदात्तता का वर्णन श्री नीलकण्ठाचार्य ने अपने 'मत्स्येद्रपाद्य शतक' में सविस्तार किया जिससे नेपाल में उनकी सर्वव्यापी महत्ता का पता चलता है। श्री मत्स्येन्द्रनाथ की करुण दृष्टि किसी मत विशेष के आश्रित नहीं थी। उनके सर्वधर्म समन्वय मंत्रित व्यक्तित्व का आकलन श्री नीलकण्ठाचार्य के निम्न श्लोक में आता है-

परे बौद्धमार्गैः परे श्रौतमार्गैः परे शैव-शक्तार्क वैनायकाद्यैः।
भवन्तं भजन्तेऽयनैः किन्तु तेषां प्रसादं करोष्येव मत्स्येन्द्रनाथः।।

(मत्स्येन्द्रपाद्य शतक-६७)

यह यात्रा-उत्सव नेपाली जीवन की सांस्कृतिक धरोहर तो है ही योगेश्वर श्री मत्स्येन्द्रनाथ के पावन चरित्र तथा महाप्रासादिक व्यक्तित्व के प्रति अतिशय कृतज्ञता का प्रतीक भी है।

कौलेश्वर महायोगी श्री मत्स्येन्द्रनाथ की रहनी और करनी में अभिन्नता थी। उनके सिद्धमत अथवा योगसाधना के संदर्भ में यह कथन सर्वदा उचित है कि उन्होंने शैव योगाचार परक विचार को अपनी साधना के प्रारम्भ में कौलचिन्तन से प्राणान्वित कर योग एवं तन्त्रगत शाक्ताचार का समन्वय कर भारतीय संस्कृति तथा सनातन धर्म को नई दिशा दी तथा संमृद्ध किया। कौलज्ञान-निर्णय

के १४वें पटल में भैरव (शिव) ऐसे ध्यान की बात बता रहे हैं जिनमें मंत्र, प्रणायाम और चक्षुध्यान की आवश्यकता नहीं है। शिवप्रोक्त यह ध्यान परम् सिद्धिदायक यंत्र है।

भक्तियुक्ताः समत्वेन सर्वे शृणवन्तु कौलिकम् ।
महाकौलात् सिद्धकौलम सिद्धकौलात् मसोदरम् ।
चतुर्युगविभागेन अवतारं चोदितं मया।।
ज्ञानादौ निर्णितं कौलं द्वितीये महासंज्ञकम् ।
तृतीयेसिद्धामृतं नामं कलौ मत्स्योदरं प्रिये।।
ये चास्मिनिर्गता देवि वर्णयिष्यामि तेऽखिलम् ।
एतस्नाद् योगिनीकौलात् नाम्नाज्ञानस्य निर्णितौ ।।

(कौलज्ञान निर्णय-१६/४६-४६)

कौलमत को सत्ययुगीन बताकर तथा शिवरूप में चारों युगों में कौलमत के प्रवर्तक एवं आचार्य के रूप में विद्यमान रहे हैं। योगिनी कौलमार्ग के प्रवर्तन के पूर्व श्री मत्स्येन्द्रनाथ सिद्ध कौलमत के प्रतिपादक थे। नाथ परम्परा में सिद्ध कौलमत ही मान्य है। कौलमत और योगमत में कोई भेद नहीं है। श्री गोरखनाथ संपोषित योगमार्ग और श्री मत्स्येन्द्रनाथ प्रतिपादित योगिनी कौलमत के परम् लक्ष्य एक ही हैं। बस इतना ही है कि योगी पहले से ही अंतरंग उपासना में निरत होता है तथा कौलमत में बहिरंग उपासना के बाद कुण्डलिनी योग की अंतरंग साधना में प्रवृत्त होता है; किन्तु परिणाम तो एक ही हो जाता है।

कौल ज्ञान के अनुसार ज्ञान स्वप्रकाश्य है। यह जगत् ज्ञाता, ज्ञेय और ज्ञान रूप से त्रिपुटी कृत है। इस त्रिपुटीकृत जगत् में समस्त पदार्थ धर्मतः एक होने के कारण सजातीय हैं इसलिए इन्हें 'कुल' कहा गया है। कुल संबंधी यह ज्ञान ही कौल ज्ञान है। ब्रह्म ज्ञान स्वरूप है, जगत् ब्रह्म है, दोनो ब्रह्म से अभिन्न है- यह अद्वैत ज्ञान ही श्री मत्स्येन्द्रनाथ के कौलमत में कौलज्ञान है। कुल शब्द का योगपरक अर्थ है 'कु' से पृथ्वी 'ल' से लीन होना का। पृथ्वी तत्व मूलाधार में अवस्थित है तथा मूलाधार से सुषुम्ना नाड़ी का उद्भव है। सुषुम्ना नाड़ी में स्थित 'कुल' कुण्डलिनी शक्ति-स्वरूपा सहस्रार स्थित परम् शिव से मिलकर सामरस्य प्राप्त करती है। शक्ति एवं शिव का सामरस्य ही कौलज्ञान है। शिव नाम गोत्र से परे होने के कारण अकुल है। शिव की सृष्टि करने की इच्छा ही शक्ति है। शिव और शक्ति में चन्द्र तथा चन्द्रिका की तरह कोई भिन्नता नहीं है। जिस प्रकार वृक्ष के बिना छाया नहीं रह सकती, अग्नि के बिना धूम्र अस्तित्वहीन है उसी प्रकार शिव-शक्ति का संबंध सनातन एवं अविभेद्य है। स्वयं कौल योगेश्वर ने 'कौलज्ञान-निर्णय' में कहा है-

न शिवेन विना शक्तिः न शक्तिरहितः शिवः ।
अन्योन्यं च प्रवर्तन्ते अग्निधूमौ यथाप्रिये ।
न वृक्ष रहिता छाया नच्छायारहितोद्रुमः ।।

(कौल० पटल -१७/८-६)

वस्तुतः जगत् जीव से ही सृष्ट है। जीव ही समस्त तत्वों का मानक है, वही जीव हंस है और वही शिव, वही प्रभु और वही मुक्तिदाता। जिसने इस आत्मतत्व को समझ लिया वही योगिराज है, साक्षात् शिवस्वरूप है और दूसरे को मुक्त कराने में समर्थ है।

जीवेन च जगत्सृष्टं स जीवस्तत्वनायकः ।
सः जीवः पुद्गलोहंसः स शिवो व्यापकः परः ।।
स मनस्तूच्यते भद्रे व्यापकः सः चराचरे ।
आत्मानमात्मना ज्ञात्वा युक्ति मुक्ति प्रदायकः ।।
प्रथमस्तु गुरुहर्यात्मा आत्मानं बंधयेत्पुनः ।
बन्धस्तु मोचयेत् हयात्मा आत्मा काम रुपिणः ।।
आत्मनश्चापरो देवि येन ज्ञातः स योगिरात् ।
स शिवः प्रोच्यते साक्षात् स मुक्तो मोचयेत् परे ।।

(कौलज्ञान निर्णय - १६/३३-३५)

श्री मत्स्येन्द्रनाथ ने नाथ योग में शिवमयी शक्ति का समावेश कुल (शक्ति) एवं अकुल (शिव) का समरसीकरण किया। गुरु गोरखनाथ ने अपनी सिद्ध सिद्धान्त पद्धति में शक्तियुक्त आदिनाथ शिव को नमस्कार कर अपने गुरु श्री मत्स्येन्द्रनाथ के योगिनी कौलमत को मान्यता प्रदान थी

आदिनाथं नमस्कृत्य शक्तियुक्तं जगद्गुरुम् ।
वश्ये गोरखनाथोऽहं सिद्धसिद्धान्तपद्धतिम् ।।

(सि० सि० प० - १/१)

कौल साधना में निद्रित कुंडलिनी को जाग्रतकर सहस्रार में स्थित शिव से मिलाने का मार्ग प्रशस्त करना

जिसे महामैथुन के नाम से जाना जाता है, ही सामरस्य है शिव-शक्ति का सामरस्य ही महामैथुन है जो परमानंददायक है। मेरुदंड जो उपस्थ और गुदा के मध्य में स्थित है वहां त्रिकोणात्मक अग्निचक्र है, जिसमें स्थित है इसके ऊपर चतुर्दल कमल, जिसे मूलाधार कहते हैं। नाभि के सन्निकंट षड्दल कमल स्वाधिष्ठान चक्र स्थित है। कंठ गह्वर में स्थित षोडश दल कमल विशुद्ध चक्र और भ्रूमध्य के बीच आज्ञाचक्र है जो द्विदलात्मक है। इन षडचक्रों का भेदन करती हुई कुंडलिनी सहस्रार स्थित परमशिव से मिलती है तथा योगी अपनी साधना में पूर्णकाम होकर कैलासवास करने लगता है। कौलाचार्य कहते हैं कि सहस्त्रार में परम शिव, हृदयपद्य में जीवात्मा और मूलाधार में कुंडलिनी का वास है। जीवात्मा परम शिव से चैतन्य तथा कुंडलिनी से शक्ति प्राप्तकर साधना के चरम लक्ष्य को प्राप्त करता है। निर्विकार निष्कल शिव का ज्ञान होते ही जीवात्मा सर्वबन्धविनिर्मुक्त, होकर परम् मोक्ष पा लेता है, वहां नाथ योग तथा कौलमत परम लक्ष्य प्राप्तकर परमानंद मोक्ष के अमृत से परितृप्त हो जाता है। कुंडलिनी भेदन नाथपंथ तथा कौलमार्ग की सर्वाधिक महत्वपूर्ण क्रिया है तथा शिव-शक्ति सामरस्य की अनुभूति प्राप्त कर परमानंददायक मोक्ष साधना की विश्रान्ति है। जीव को शिवस्वरूप का बोधकराकर शक्ति शिव में विलीन हो जाती है यह कौल मत का चरम लक्ष्य है तो नाथ योगी नाथ तत्व के चरम लक्ष्य को पाकर शिवात्म हो जाता है। कौलों का कुलाष्टक उनकी जीवन विधा है तथा कुंडलिनी भेदन उनकी साधना का अंतरंग पक्ष। इसके लिये उनका पंथ भी पाथेय का काम करता है तथा पंचमकार की सिद्धि का आधार है जो स्थूल से सूक्ष्म, सूक्ष्मतर से सूक्ष्मतम होता है। संकल्प, मौन, वज्रसत्वाधिकार का साधन करने से कुंडलिनी स्वतः जाग्रत होकर उत्थित होने लगती है। कौलमत में ध्यान, मदिरा, वाणी का संयम किंवा मौन ,मांस भक्षण, मनोनिग्रह, मत्स्यभक्षण सर्वदा आनंद-मस्ती में रहना मुद्रा तथा सामरस्य प्राप्त करना महामैथुन है। तभी तो योगेश्वर कौलाचार्य श्री मत्स्येन्द्रनाथ ने कौलमत को आध्यात्म के सर्वोच्च शिखर पर आरूढ़ किया। कौलिक योगी की निस्पृहता का वर्णन इन पंक्तियों में देखें :-

अवधूरहिवा हारें-बारें कल्पवृक्ष की छाया।
तजिवा काम क्रोध तृष्णा संसार की माया।
आप सौं गोष्ठी अनन्त विचार।।

(मछीन्द-गोरखनाथ-२)

मछीन्दर-गोरख वार्ता नाथपंथ की ही नहीं कौलमत की भी धरोहर है तथा आचार पद्धति है। जन्म-मृत्यु का चक्र चलता रहेगा जब तक मनुष्य स्वार्थ में उलझा रहेगा, जल की स्पृहा जैसे मछली को होती है, मोर बादल को चाहता है तथा चकोर चन्द्रमा को, इसी तरह साधक अपने स्वामी परमात्मा का भजन करता है। जीवात्मा का परम उद्देश्य परमार्थ है। योगसाधना से मन परम तत्व को जानकर मिट जाता है। अनासक्त भाव से विचरण करने वाला ही योगी है जो निरंजन शिव का साक्षात्कार करने में समर्थ है।

कौलयोग मत के प्रवर्तक महायोगी श्री मत्स्येन्द्रनाथ आध्यात्म सागर के प्रकाश स्तंभ हैं जो भूले भटके को सही मार्ग पर लाते रहेंगे तथा जो तत्वानुसंधान में रत हैं वे अपने सही मार्ग को पहचान कर ठीक दिशा में बढ़ते रहेंगे। उनके द्वारा युग-युग से असंख्य प्राणियों को गुरु तत्व का ज्ञान हुआ तथा कौलयोग का महाज्ञान प्राप्त हुआ जिससे इस दुष्कर भव-सागर को पारकर नीरव प्राप्त कर पूर्ण काम निरंजन स्वरूप हो गये। अलौकिक-विभूति महायोगी श्री मत्स्येन्द्रनाथ कई दृष्टिकोण से भारतीय संस्कृति एवं आध्यात्म के शिखर पुरुष के रूप में सार्वकालिक एवं सार्वदेशिक महिमामंडित बने रहेंगे। वे शाश्वत् पुरुष हैं, शिव हैं।

◆◆◆

दुर्गासप्तशती : कवच-सिद्धि एवं उसका उपयोग

दुर्गा सप्तशती के षड्ंगों में कवच-पाठ भी एक महत्वपूर्ण अंग है जिसके बिना सप्तशती पाठ पूर्ण नहीं होता तथा अंगहीन पाठ साधक के लिये घातक एवं हानिकारक है। दुर्गासप्तशती के पाठ में कवच पाठ का विधान अपरिहार्य है ताकि पाठ की अवधि में निर्विघ्न पाठ पूरा हो तथा साधक की सुरक्षा बनी रहे। दुर्गासप्तशती एक महत्वपूर्ण तंत्र ग्रंथ है जिसके प्रत्येक श्लोक का तांत्रिक विधान विभिन्न कामनाओं की पूर्ति के लिये किया जाता रहा है, किन्तु उसके हर प्रयोग में साधक को आत्म रक्षा का विधान करने के बाद ही तांत्रिक क्रियाओं को करना चाहिये अन्यथा कभी-कभी भयानक परिणाम यहां तक कि शरीर पात जैसे परिणाम भुगतने पड़ सकते हैं। तांत्रिक प्रक्रिया या प्रयोग एक गुप्त एवं रहस्यमयी विद्या है और रक्षा विधान उसका अंग अन्यथा सिद्धि तो दूर पग-पग पर हानि एवं अन्य दुष्परिणाम भोगने पड़ सकते हैं। वैसे सुरक्षा के कई विधान हैं, छोटे-बड़े मंत्र-तंत्र-यंत्र हैं तथा कितने ही स्तोत्र तथा पाठ हैं जिनका प्रयोग शांति, सुरक्षा एवं पूर्णता के लिये किया जाता है। जीवन के प्रति मोह के कारण इसकी सुरक्षा-व्यवस्था की परिपाटी सभी जीवधारियों में होती है। अपना शरीर सभी को प्रिय होता है और इसका अनिष्ट कोई भी करना नहीं चाहता। इसकी सुरक्षा के प्रति कीट-पतंग से लेकर देव-दनुज-मानव सभी सचेष्ट रहते हैं और सुरक्षा की जहां किंचित् भी चिंता होती है, थोड़ी भी आशंका होती है, सभी अपने-अपने ढ़ंग से प्रतिकार करते हैं तथा सुरक्षा की पुनर्व्यवस्था का प्रयास करते हैं। फ्रायड तथा आधुनिक मानसविदों ने मनुष्य की सारी क्रियाओं के मूल में इसी सुरक्षा की भावना को कारण भूत बताया है। प्रकृति ने भी सभी जीवों में अपनी सुरक्षा करने की शक्ति प्रदान की है तथा विभिन्न ढंग से वे आक्रमणकारियों से अपनी रक्षा करते हैं। अन्य जीवों के विपरीत भविष्य की सुरक्षा के लिये भी मानव सचेष्ट रहता है जबकि अन्यान्य जीव संकट के आ जाने पर अपनी सुरक्षा की व्यवस्था करते हैं।

मनुष्य त्रय ताप से पीड़ित होने की संभावना से बचना चाहता है। देहिक, दैविक और भौतिक त्रय ताप है, जिनसे मनुष्य जीवन में कष्ट तथा क्लेश पाता रहता है। रोग-व्याधि दैहिक ताप है, सांसारिक बाधा में प्रतिकूल परिस्थितियों में उलझ जाना भौतिकताप है तथा अदृश्य कारणों से ग्रहादिक, भूतादिक तथा अचानक किसी प्रकोप में फंस जाना देविक ताप है। इन तीनों तापों से सुरक्षा के लिये मनुष्य ने विभिन्न व्यवस्थायें कर रखी हैं। यथामति अनेक क्रियाओं का रहस्योद्घाटन किया है। जीवन की सुरक्षा बनी रहे तब भी कोई वैभव, कोई साधन का अर्थ होता है अन्यथा सब कुछ व्यर्थ। सारे हास-विलास, सुख के सारे उपादान, सारी सुख-सुविधायें विस्मृत हो जाती हैं। जहां सुरक्षा के प्रति ज़रा भी आशंका हुई। मनुष्य अपने कर्त्तव्यों का भी समुचित रूप से तभी पालन कर सकता है जब उसकी सुरक्षा बनी रहती हैं अन्यथा वह अपने कर्त्तव्यों से क्षणभर में विमुख होकर सुरक्षा की चिन्ता करने लगता है।

हमारा जीवन सुरक्षित रहे और हमारा सर्वतोन्मुखी विकास होता रहे, हमारी अन्तश्चेतना का अंग है। इन्हीं दो तथ्यों पर हमारा सारा ज्ञान-विज्ञान टिका हुआ है। आयुर्वेद में साधारण रोगों के निदान से लेकर कायाकल्प तक की व्यवस्था दी गई है। मानसिक तथा शारीरिक तलों पर हम कैसे पूर्ण निरामय रहें, हम अपनी जीवनी शक्ति को अपने शरीर में अधिक-से-अधिक समय तक टिकाये रखें आयुर्वेद का अनुसंधान इन्हीं बातों को लेकर है। तंत्र-मंत्र के प्रयोग तो इससे भी आगे बढ़कर अमरत्व की बातें करने लगे हैं। आध्यात्मिक जगत् से हमारा संबंध बना रहे तथा सूक्ष्म पारलौकिक जीवन से हमारा परिचय स्थापित हो ताकि हम देवताओं की तरह अमरत्व पा सकें। अभी जरा और मृत्यु को लेकर जो प्रयोग विभिन्न देशों में किये जा रहे हैं उनसे यह संभावना प्रबल होती जा रही है कि मनुष्य आने वाले वर्षों में अमरत्व की खोज में सफल हो पायेगा और आश्चर्य की बात तो यह है कि सबका जीवन सुलभ हो वे ग्रह-उपग्रह पर अपने किये निवास तथा भोजन की व्यवस्था की भी बात सोचने लगे हैं। चिकित्सा शास्त्र इन विषयों पर अपना गहन अनुसंधान सतत करता रहा है।

तंत्र-मंत्र भारतीय आध्यात्म के सर्वाधिक महत्वपूर्ण पहलू हैं। लाखों वर्षों से इन तंत्र-मंत्रों का प्रयोग होता

आया है और वैज्ञानिक प्रगति के साथ-साथ इस दिशा में भी बहुत काम हो रहे हैं। ध्वनि परा-शक्ति है और इसका प्रभाव अपरिमित होता है, जो ब्रह्माण्ड के किसी भी हिस्से में जाकर अपने अनुकूल प्रभाव डाल सकता है। प्राचीनकाल के योगी, ऋषि तथा तत्त्वदर्शी पुरूषों ने ऐसे भेद तथा तांत्रिक प्रक्रियाओं को विकसित कर लिया था। वे कुछ भी असंभव को संभव कर दिखाते थे। मंत्र शक्ति के प्रभाव से वे इच्छानुकूल परिणाम पैदा कर सकते थे। किसी पदार्थ का किसी अन्य पदार्थ में रूपांतरित कर देने की अनेकशः घटनाओं का प्रत्यक्षीकरण स्वामी निशुद्धानंद सरस्वती के जीवनकाल के विद्वानों ने उनके सान्निध्य में देख लिया है। शक्ति को पदार्थ तथा पदार्थ को ऊर्जा में बदल देना उनके लिये मंत्र साध्य था जिसके लिये आज विशाल यंत्रों की आवश्यकता होती है।

ध्वनि-विज्ञान के चमत्कार का अनुभव कराने वाले मनीषी आज भी विद्यमान हैं तथा यदा-कदा उनके दर्शन होने पर उनके क्रियाकलापों को विस्मय के साथ देखकर दंग रह जाना पड़ता है। न्यूयार्क के मूर्धन्य वैज्ञानिक भौतिकविद्डॉक्टर लारेन्स केस्टो ने यह प्रमाणित कर दिया है ि विभिन्न ध्वनि तरंगो का अपना कार्य क्षेत्र होता है और इनमें इतनी सामर्थ्य है कि वे प्राकृतिक परिवर्तनों के साथ-साथ स्वयं अपरिवर्तित रह जाती हैं।

ऐसी ही शक्तिशाली विद्या है दुर्गा-कवच की सिद्धि जिसके विषय में लिखा है-"अतिगुह्यतमम्" अर्थात् यह कवच अत्यन्त ही रहस्यमय है। मार्कण्डेय मुनि ने प्रार्थना की ब्रह्मा से-

यद्गुह्यं परमं लोके सर्व रक्षा करं नृणाम्।
यन्न कस्यचिदाख्यातम् तन्मे ब्रूहि पितामह।।

इसकी फलश्रुति में ब्रह्मा ने कहा-

यं यं चिन्तये कामं तं तं प्राप्नोति निश्चितम्।।
परमैश्वर्यमतुलं प्राप्यते भूतले पुमान्।
निर्भयो जायते मर्त्यः संग्रामेष्वपराजितः।।
त्रैलोक्ये तु भवेत्पूज्यः कवचेनावृतः पुमान्।

और फिर यह कवच देवताओ को भी दुर्लभ है तथा सभी आधि-व्याधि विपदाओं से सुरक्षित मनुष्य सौ वर्षो तक जीता है तथा उसकी कीर्ति दिग्दिगन्त में फैल जाती है। भगवती की कृपा प्राप्त कर वह जिस स्थान में शरीर छोड़ता है वह देवताओं को भी दुर्लभ है।

इस प्रकार इस कवच का प्रभाव अक्षुण्ण है। किन्तु दुर्गासप्तशती के अंगरूप में वर्णित इस कवच का पूर्णतंत्र विधान भी ऋषियों ने रच रखा है। मात्र इस कवच को सिद्ध करने वाला साधक इसके माध्यम से स्वयं तथा अन्य को सुरक्षा प्रदान कर सकता है। उसका या अपना जो भी मनोरथ हो पूर्ण कर सकता है। मात्र इस कवच के सिद्ध करने वाला साधक सिद्ध के रूप में कीर्तिमान होकर सर्वपूज्य बन जाता है।

स्नान ध्यान कर संकल्प लें दुर्गा मंदिर में आकर या फिर अपने साधना कक्ष में ही विधि-विधान से दुर्गा-प्रतिमा को रखकर प्राणप्रतिष्ठा कर दें। दीप प्रज्वलित कर षोडशोपचार से देवी का पूजन कर सारे वातावरण को धूप-गुगुल से सुगंधित कर लें। फिर दुर्गा रक्षा कवच यंत्र भोजपत्र पर बनाकर उसकी भी प्राण प्रतिष्ठा करें तथा षोडशोपचार से "ह्रीं दुं दुर्गायै नमः" से प्रत्येक वस्तु द्वारा यंत्र का पूजन करें। फिर किसी पात्र में रखकर ११ बार विनियोग सहित देवीकवच का पाठ करें। फिर ग्यारह माला दुर्गा मंत्र या नवार्ण मंत्र का जाप करें। कवच चूंकि सप्तशती का अंग है अतएव शापोद्धार, उत्कीलन, संजीवनी मंत्र का यथा-विधि जप कर लें। गीताप्रेस गोरखपुर से प्रकाशित दुर्गासप्तशती की पुस्तक में विधि दी हुई है। अंत में क्षमा प्रार्थना कर यंत्र को माथे से लगाकर फिर रख दें। फिर, कवच के प्रति श्लोक से हवन करें फिर दुर्गा मंत्र से भी आहुतियां दें। फिर जिस पात्र में यंत्र स्थापित है उस पात्र को ऊपर से धूपित करें, तीन दिनों तक इस विधि से कवच पाठ तथा यंत्र को सिद्ध करते रहें। उसके बाद आवश्यकतानुसार हर कार्य में विशेषकर कहीं भी समय-स्थान की सीमा से परे घटने वाली घटनाओं से भी यह रक्षा करता है। कवच सिद्ध कर लेने के पश्चात् इसका नित्य एक पाठ करते रहना चाहिये। संकल्प लेकर किसी भी दुर्घटना से, किसी को वापस बुलाने, आधि-व्याधि या प्राण संकट आने पर इस कवच का स्मरण करते ही तुंरत प्रभाव पड़ता है। अपने या अन्य का भी कल्याण इस सिद्ध कवच के द्वारा किया जा सकता है। कवच सिद्ध साधक यदि किसी को कवचमंत्र बांध दें तो उस की सारी कामनायें पूर्ण होती हैं तथा वह सर्वदा सुरक्षित रहता है।

❊❊❊

कुंडलिनी और तंत्र साधना

कुंडलिनी जागरण की अनुभूति योगी समाज में सार्वजनीन है। बिना कुंडलिनी जागरण के साधु-संत और योगी अपनी साधना के चरम-स्पर्श से वंचित रह जाते हैं तथा परम-सिद्धि के द्वार पर भी नहीं पहुंच पाते। योगी समाज की इस सार्वजनीन अनुभूति की व्याख्या सिवा भारतीय योगियों के किसी ने नहीं किया, भले ही अपनी इस अनुभूति का वर्णन विभिन्न शैलियों में किया हो। हज़रत मूसा को कोहिनूर पर्वत पर जिस ज्योति का दर्शन होता था वह कुंडलिनी जागरण की ही अनुभूति थी। ईसा मसीह के अलौकिक क्रिया व्यापार का रहस्य उनकी कुंडलिनी संबंधी ज्ञान में सन्निहित था, किन्तु इसकी वैज्ञानिक अथवा आध्यात्मिक युक्तिसंगत व्याख्या भारतीय योगियों नें ही की है और इसका विशद् आकार विभिन्न ग्रंथों में वर्णित है। योगियों ने बताया कि कुंडलिनी जागरण के बिना योग सिद्धि का चरमोत्कर्ष संभव नहीं। यह आर्ष वचन कि जो पिण्ड में नहीं है वह ब्रह्माण्ड में भी नहीं है। समष्टिगत ब्रह्माण्ड से संचालित शक्ति महाकुंडलिनी है, वही पिण्ड में व्यष्टि भाव से कुंडलिनी के रूप में सभी जीवों में अवस्थित है। वेद, आगम, उपनिषद्, पुराण और साधु-संतों के वचनों में इस कुंडलिनी शक्ति पर पर्याप्त प्रकाश डाला गया है, जो सनातन धर्म की प्रचीनता एवं वैज्ञानिकता को प्रमाणित करती है। सभी संप्रदाय के चाहे वे किसी धर्म या मजहब के हों अपनी साधना की चरम स्थिति में कुंडलिनी जागरण की अनुभूति होती रही है। इस शक्ति के जागरण के साथ ही मनुष्य में देवत्व का विकास हो जाता है तथा वह परमात्म स्वरूप बनकर अखिल ब्रह्माण्ड में शुभ एवं मंगलमय शक्तियों का समायोजन कर सचराचर जगत् का कल्याण कर ब्रह्मर्षि पद से विभूषित हो जाता है। योग वशिष्ठ, तेज बिन्दूपनिषद्, योगचूड़ामणि, ज्ञान संकलिनीतंत्र, शिवपुराण, देवीभागवत्, शांडिल्योपनिषद्, मुक्तिकोपनिषद्, हठयोग प्रदीपिका, कुलार्णव तंत्र, योगिनी तंत्र, घेरंड संहिता, कंठश्रुति, ध्यानबिंदूपनिषद्, रुद्रयामल तंत्र, योगकुंडलिन्योपनिषद्, शारदातिलक आदि ग्रन्थों में इसके विभिन्न आयामों का अत्यंत विस्तार से वर्णन हुआ है। यद्यपि उसके विधानों तथा विवरणों में यत्किंचित् जो अंतर आया है वह अनुभूतिजन्य अंतर के फलस्वरूप है, तथापि जो भी सांगोपांग विवेचन है, वह भारतीय आर्ष उपलब्धि का प्राण तत्व है। यह सर्वमान्य निर्णय है कि आन्तरिक और आत्मिक शक्तियों की प्रसुप्ति अवस्था से जाग्रतावस्था में लाकर प्रचण्डावस्था में पहुंचाने में कुंडलिनी जागरण एक अपरिहार्य साधना है अन्यथा साधना का प्रकर्ष संभव नहीं है।

कुंडलिनी शक्ति के स्वरूप तथा विस्तार का वर्णन विभिन्न ग्रंथों में भिन्न-भिन्न ढंग से किया गया है। कहीं रूपकात्मक, कहीं आलंकारिक तो कहीं सीधे-साधे ढंग से इसपर प्रकाश डाला गया है इनमें कुछ उदाहरण यहां प्रस्तुत हैं-

यत्कुनारी मन्द्रयते यथोविद्य पतिव्रतो अरिष्टं
यत्किंचित् क्रियते अग्निस्तदनुवेधति। ...
कुंडलिनीशक्तिरवस्थात्रयं विद्यते।
यद्अस्मिन्चक्रेकुमारीकुमारावस्था मापन्नाप्रथमं
सुप्तास्थिता मन्द्रयते मन्द्रं स्वरं करोति।
पुरँ हिरण्यमयी ब्रह्मा विवेशीपराजिता।

(यजु०)

अपराजिता कुंडलिनी शक्तिः
षट्चक्राणि मित्वाभूयोभूयःप्रविशति।

(सौंदर्यलहरी - लक्ष्मीधर व्याख्या)

कुंडले अस्याः स्तः इति कुंडलिनी।
मूलाधारस्थ वह्नयात्मतेजोमध्ये व्यवस्थिता।
जीवशक्तिः कुंडलाख्या, प्राणाकाराथ-तैजसी।।
महाकुंडलिनीप्रोक्ता परब्रह्मस्वरूपिणी।
शब्द ब्रह्ममयीदेवी एकानेकाक्षराकृतिः।।
शक्तिः कुंडलिनीनाम निस्तन्तुनिभाशुभा।

(योगकुंडल्योपनिषद्)

मूलाधारे मूलविद्यां विद्युत्कोटिसमप्रभाम्।
सूर्यकोटिप्रतीकाशां चन्द्रकोटिद्रवां प्रिये।।
विसतन्तुस्वरूपांतां बिन्दुत्रिवलयां प्रिये।

(ज्ञानार्णव तंत्र)

यदाललसति श्रृंगारपीठात् कुटिलस्वरूपिणी।
शिवार्कमंडलंमित्वा द्रावयन्तीन्दुमंडलम्।।

(वामकेश्वर तंत्र)

अष्टधाकुंडलीभूतामृर्ज्वीकुर्यातु कुंडलीम्।

(योगशिवोपनिषद्)

मूलाधार आत्मशक्तिः कुंडलीपरदेवता।
शयिता भुजगाकारा, सार्धत्रिवलयान्विता।।

(घेरंड संहिता)

भिन्न-भिन्न ग्रथों में बिखरे भिन्न-भिन्न विचार हैं। वस्तुतः यह विषय योगानुसंधान का है। योगशास्त्र से योगविज्ञान प्रयोगाधारित प्रयोगसिद्ध विधा है। जिन-जिन विषयों का वर्णन हुआ है, वे अनुभवजन्य हैं आज भी यदि कुंडलिनी जागरण की साधना से कोई गुजरे तो इन तथ्यों की तदैव अनुभूति हो सकती है। समस्त ब्रह्म की संचालिनी शक्ति महाकुंडलिनी है जो अव्यक्त है किन्तु व्यष्टि रूप जीव का संचालन जो शक्ति करती है वह व्यक्त कुंडलिनी है। इड़ा और पिंगला के मध्य जिस नाड़ी का प्रवाह है वह सुषुम्ना है। इसके अन्तर्गत और भी नाड़ियां हैं, वंज्रिणी और चित्रणी। चित्रणी नाड़ी के मध्य में कुंडलिनी शक्ति का मार्ग है। कुंडलिनी शक्ति के व्यक्त होते ही वेग उत्पन्न होता है और जो प्रथम 'स्फोट्' होता है वह नाद है। 'नाद' से प्रकाश विसर्जित होता है जिसका व्यक्त रूप है महाबिन्दु। नाद के तीन भेद हैं - महानाद, नादान्त और निरोधिनी। बिन्दु के भी तीन भेद हैं - इच्छा, ज्ञान और क्रिया जिसके अधिष्ठान देव हैं सूर्य, चन्द्र और अग्नि; ब्रह्मा, विष्णु और महेश। जीव सृष्टि में उत्पन्न होने वाला नाद झंकार है जिसे शब्द ब्रह्म भी कहते हैं। इसी से ५२ मतृकायें अक्षर रूप से उत्पन्न हुईं। ५१वीं प्रकाश रूप तथा ५२वीं प्रकाश के प्रवाह रूप में आई। यही सत्रहवीं जीवन कला है। लोमविलोम प्रकार से यही पचास मातृकायें सौ हो जाती हैं। इस कुंडलिनी शक्ति से चैतन्यमय जीव देहेन्द्रियाभियुक्त जीवरूप धारण किये हुए प्राणशक्ति से युक्त स्थूल शरीर अर्थात् अन्नमय कोष है।

जब जीव की चैतन्य शक्ति सहस्रार से अनाहत में प्रवेश करती है तो सहस्राराख्यित अव्यक्तनाद आज्ञाचक्र भ्रूमध्य में ॐ रूप से व्यक्त हो जाता है। इस अव्यक्त स्थिति का जो स्थान सहस्त्रार चक्र में है उसे ही अकुल स्थान अर्थात् कैलाश, विष्णु लोक, परमपद आदि वाच्यों से जाना जाता है, यही शिवशक्ति का स्थान है। श्री शिव-शक्ति अर्धनारी नटेश्वर हैं जहां शिव अव्यक्त तथा शक्ति व्यक्त हैं। इस अकुल स्थान से उत्पन्न होने वाली जो मातृकायें हैं वे निम्नतर स्थानों में व्यक्त होती चली गईं।

अकुलं च महाबिन्दुः, उन्मना समना तथा

फिर विलास प्रकार से,

कुलाथ कुलपद्यां च विष्णुवाधार संज्ञकम्

भ्रूमध्यगत आज्ञा चक्र के नीचे विशुद्ध, अनाहत, मणिपुर, स्वाधिष्ठान और मूलाधार चक्रों में क्रम से इस प्रकार मातृकायें अवस्थित हैं जिससे सिद्ध होता है कि इन चक्रों में से ही मातृकात्मक स्वरमाला और वर्णमाला प्रस्फुटित हुईं। विशुद्ध चक्र के समीप रुद्रग्रंथि, मणिपुर के समीप विष्णु ग्रंथि और मूलाधार के समीप ब्रह्मग्रंथि है।

अ, आ, क-वर्ग, ह	**- कंठ स्थान**
इ, ई, च-वर्ग	**- तालू स्थान**
ऋ, ॠ, ट-वर्ग	**- मूर्धा स्थान**
ऌ, ॡ, त वर्ग ल, स	**- दंत्य स्थान**
उ, ऊ, प-वर्ग	**- ओष्ठ स्थान**

मूलाधार, मणिपुर, अनाहत, विशुद्धि से उद्भव होने पर भी इन चक्रों का नाम उत्पत्ति स्थान से अभिहित नहीं किया गया क्योंकि परा, पश्यन्ती, मध्यमा, बैखरी वाणी के ये चारों प्रकार का उत्पत्ति स्थान मूलाधार है, बैखरी अर्थात् शब्दोच्चारण का स्थान परावाणी है। पहले मन में वृत्ति उठती है तथा वृत्ति सदृश विचार आता है तो पश्यन्ती बन जाता है, पश्यन्ती वाणी नेत्रों से दिखती है। अर्धवाक् और रसना तक आने से वही मध्यमा वाणी बन जाती है जो स्पष्ट व्यक्त होने पर बैखरी वाणी कहलाती है। मंत्रजप में पहले मध्यमा में दर्शन और अस्पष्ट उच्चारण करते हुए वैखरी में उसका स्पष्ट उच्चारण करें।

सहस्रार के नीचे षोडशदल सोमचक्र है, उसके नीचे द्वादश दल मनश्चक्र है जो विचारोत्पत्ति का स्थान है। ये चक्र सर्वमान्य योगमार्ग के श्री द्वार, गोलाकार और त्रिकूट चक्रों के समीपस्थ हैं। मनोवहा नाड़ी का संबंध भी इसी से है, शब्दवहा नाड़ी श्रवणोन्द्रिय गोलक, रूपवहानाड़ी नेत्रेन्द्रिय गोलक, रसवहानाड़ी वीणिन्द्रिय गोलक-गंधवहानाड़ी प्राणेन्द्रिय गोलक, स्पर्शवाह नाड़ी स्पर्शेन्द्रिय गोलक में स्थित हैं। इनमें किसी भी नाड़ी की विकृति से तत्संबंधी इन्द्रियां विकृत हो जाती हैं। इन नाड़ियों की स्थिति सहस्रार के इर्द-गिर्द है मनोवहानाड़ी के ऊपर स्थित है। आज का विज्ञान इतना विकसित हो चुका है कि वह विचार तक का फोटो ले सकता है। इनमें देखा गया है कि विचार मालिका सहस्रार चक्र से बाहर निकल रही है, ऐसा

अब कहा जाने लगा है कि वाणी का उद्‌गम सहस्रार ही है, मूलाधार या स्वाधिष्ठान नहीं। इस पर अनुसंधान चल रहा है और संभव है यह भ्रांतियां दूर हो जाएं और वाणी का उद्‌गम मूलाधार ही प्रमाणित हो जाय।

मन का स्थान आज्ञा अथवा अनाहत चक्र के पास है। मन के भी दो भेद हैं एक विचार करने वाला और दूसरा विषयों को भोगने वाला। वामकेश्वर तंत्र के अनुसार सहस्रार भी दो प्रकार के हैं जिनमें एक मूलाधार में भी है और कुंडलिनी जिस स्वयंभू लिंग को आवृत किये हुए है वह इसी मूलाधार के सहस्रार में है। इसके अनुसार परावाक् मूलाधार में, पश्यन्तो मणिपुर में, मध्यमा अनाहत में, वैखरी विशुद्धि में स्थित है।

ब्रह्मांड की उत्पत्ति के पूर्व स्फोट् से महानाद उत्पन्न हुआ। परब्रह्म की इच्छाशक्ति ही स्फोट् है तया नाद उसकी क्रिया शक्ति। नाद से गति और गति से प्रकाश उष्णता, नाद और गति तीनों परस्पर सापेक्ष हैं। उष्णता का दृश्यरूप प्रकाश तथा महानाद के साथ अक्षरोत्पत्ति हुई। परमशिव के डमरू से 'अ, इ, उ, ण' अक्षर आये। जो ब्रह्मांड में है वही पिंड में भी है इस प्रकार से जीव की उत्पत्ति के साथ नाद, अक्षर और प्रकाश उत्पन्न हुए। मातृकाओं के साथ प्रकाश का संयोग नित्य है। 'पंच पंच उषः' काल में नियत मानस होकर मध्यमा वाणी से नाम स्मरण करते हुए प्रवाहमान नाड़ी पर ध्यान देने से अपनी श्वास गति के साथ-साथ छः मास में प्रकाश किरणों का साक्षात्कार होने लगता है, यह प्रकाश कभी कोटि सूर्य प्रकाश की तरह तो कभी कोटिचन्द्र प्रकाश की तरह सुशीतल होता है। जो साधक जिस नाड़ी के सहारे अभ्यास करेगा, वैसी ही उसे अनुभूति होगी। स्वप्न में भी जो हम अनुभव करते हैं वह सब प्रकाश में ही हुआ करता है अर्थात् प्राणमय कोष प्रकाश स्वरूप है। डॉ० किलनर ने ऐसे औरोस्कोपिक ग्लास का आविष्कार किया जिससे प्राणमय शरीर का फोटो लेना संभव हो सका है। यही प्रकाशात्मक कुंडलिनी शक्ति समस्त शरीर में परिव्याप्त है। मनोमय शरीर में ऊष्मा उत्पन्न होने पर अन्नमय शरीर में उसकी क्रिया होने का साधन प्राणमय शरीर है जिसे सूक्ष्म शरीर कहते हैं। यह कुंडलिनी सहस्रार में प्रकाश रूप में स्थित है। जीव को जीवत्व से सम्पन्न करने के लिए सूक्ष्म से सूक्ष्मतर होती हुई विभिन्न नाडियों में प्रवाहमान होने के कारण इसकी उपमा मृणालतंतु से दी गई है।

षड्‌विकारों से युक्त जो जीवात्मा है और षड्‌विकारों से रहित क्लेशकर्म विपाक रहित जो है वह परमात्मा है। जिन अनेक प्रक्रियाओं से जीवात्मा का संयोग परमात्मा से होता है जो वह जीवात्म-परमात्म योग है। अतएव अद्वैतमत में दोनों को अभिन्न कहा गया है। जीवात्मा को जब परमात्मस्वरूप का ज्ञान हो जाता है तो उनमें एकत्व हो जाता है। मायामृग जल से जीवात्मा और परमात्मा भिन्न-भिन्न प्रतीत होते हैं किन्तु उनका योग नित्य है सनातन है। यह भिन्नता मानसिक संबंध-विकल्पों से प्रतीत होता है। माया से प्रबल बंधन अन्य कुछ भी नहीं, उस बंधन को काटने वाला योग- सा अव्यर्थ साधन भी अन्य कुछ भी नहीं, इस प्रकार के योगों में कुंडलिनी-शक्ति योग सर्वश्रेष्ठ है।

जीवशिवैक्य योग ही यथार्थ है इसकी विभिन्न ग्रंथों में सम्प्रदाय भेद से अनेकानेक भेद किये गये हैं। योग शास्त्र के ग्रंथों में योग के चार विभाग किये गये हैं और सम्मोहन तंत्र योग में पाँच विभाग। ये चार विभाग हैं - मंत्रयोग, लययोग, हठयोग और राजयोग। श्रीमद् भगवद्‌गीता में कर्मयोग, भक्तियोग और ज्ञानयोग तीन विभाग वर्णित हैं। सम्मोहन तंत्र के पाँच विभाग इस प्रकार हैं- राजयोग, लययोग, हठयोग, मंत्रयोग और ज्ञानयोग।

ज्ञानयोग में सप्तभूमिकाओं के पार जाना पड़ता है-

१.'शुभेच्छ' अर्थात् विवेक वैराग्य की स्थिति।

२. विचारणा अर्थात् श्रवण-मनन की अवस्था जिसके बाद मुमुक्ष का भी पद आता है।

३. मनुमानसा अर्थात् पंचभूतात्मक देह तथा प्रापंचिक जगत् की अनित्यता पर विचार करना।

४. सत्त्वेपत्ति अर्थात् मैं ब्रह्म हूँ की धारणा को दृढ़ करना।

५. असंसक्ति अर्थात् नानाविध सिद्धियों के प्रति विमुखता या अनासक्ति।

६. पदार्थामादिनी अर्थात् अहंब्रह्मास्मि वृति को भी छोड़ देना।

७. तुर्यगा अर्थात् आत्मस्वरूप में स्थिर रहना।

इन सप्तभूमिकाओं के परे विक्षिप्तता, गतायाता, संश्लिष्टता और सुलीनता इन चार अवस्थाओं में तथा लय, विक्षेप, कषाय और रसास्वाद इन चार विघ्नों को पारकर निरालम्ब स्थिति में तल्लीन होकर रहना।

राजयोग में महामुनि पतंजलि का योगसूत्र सर्वश्रेष्ठ है। इसमें चार पाद वर्णित हैं - समाधिपाद, साधनपाद,

सिद्धिपाद और कैवल्यपाद। अष्टांगयोग साधन कर शरीर के विभिन्न स्थानों में मनः संयम करने से विभिन्न सिद्धियां मिलती हैं। प्रन्तु ये सिद्धियां आत्मस्थिति में अन्तराय हैं। इसलिये विवेकख्यातिकर निर्विकल्प समाधि में जाना चाहिये। 'ईश्वर प्रणिधानाद्व' यह चरमलक्ष्य है।

तंत्र में भावन, कर्म और ध्यान की त्रय साधना का वर्णन है। भावन का अभिप्राय कि मूलाधार से ब्रह्मरंध्र सप्तलोक का प्रकाशरूप एक दंड है, उसमें जलज, उद्भिज, जारज, देव, दानव, मानव ये सब एक पर एक अपने तेज रूप दंड में रहते हुए समाविष्ट हैं इस प्रकार की भावना करना। कर्मका अभिप्राय है कि मैं ब्रह्मशक्ति साधक हूँ, ऐसी भावना करते रहना ध्यान है :

शुद्धमात्मात्यखिलं शुद्धज्ञानतपोमयम्।
शुद्धेन्द्रियगुणोपेतं परं तत्वं विभावये।।

ऐसा कहकर भ्रूमध्य में शुभ्रकमल के बीच परम पुरुष का ध्यान करें। तंत्र मार्गी गुरु शक्ति-पात करके शिष्य के भ्रूमध्य तथा विशुद्धि का स्पर्श कर प्रकाश का अनुभव कराते हैं तथा इष्ट का विनिर्करण कर मंत्र योग और ध्यान योग की संयुक्त दीक्षा देते हैं जिसे शांभवी दीक्षा भी कहते हैं। इस दीक्षा के प्राप्त होते ही हठ योग के क्लिष्ट और कष्टसाध्य साधनों से प्राप्त ज्ञान गुरु-कृपा से ही शिष्य को प्राप्त हो जाता है। तंत्रमार्ग की पंचमार्गीय साधना में अपने अपने इष्टदेव के ध्यान करने की विधियां हैं। अनाहत चक्र के द्वादश दल कमल में इष्ट को कल्पतरू के नीचे मणिपीठ पर आसन देना होता है। त्रिगुणमय ॐकार जब इस स्थान पर व्यक्त होने लगता है तो साधक तल्लीन होने लगता है तथा तुरीयावस्था का आनंद लेने लगता है। निर्वात् स्थान की ज्योति शिखा के समान अंगुष्ठाकार जीवात्मा का यही स्थान है। गुरुकृपा से जब वितैषणा और दारेषणा नष्ट हो जाती है तथा कालान्तर में लोकैषणा से भी विमुख हो जाता है तब उसका वास आज्ञाचक्र में हो जाता है। सहस्रार स्थित गुरुदेव से इसी स्थान में आज्ञा मिलती है। आज्ञाचक्र में योनित्रिकोण है उसमें इतर यह पाताल लिंग है। अग्नि, सूर्य और चन्द्र इस त्रिकोण में एकत्र हैं। महतत्व तथा प्रवृत्तितत्व यहीं स्थित है। महत्तत्व से बुद्धि, चित, अहंकार और संकल्प-विकल्पात्मक मन ये चार विभाग हैं। अव्यक्ता प्रणवरूप आत्मा का यही स्थान है, इसी स्थान में प्रवेशकर और प्राण स्थिर कर योगी लोग महाप्रयाण करते हैं- 'भ्रूर्वोर्मध्ये प्राणमावेश्य सम्यक् सतं परं पुरुषमुपैतिदिव्यम्' के अनुसार प्राण पुरुष में लीन हो जाते हैं। इसी स्थान में योगीजन तेजोमय ब्रह्म का अनुभव कर तुरीयातीत अवस्था में रहते हैं।

इस आज्ञाचक्र के समीप कारणशरीररूप सप्तकोश हैं जिन्हें इन्दु, बोधिनी, नाद, अर्धचन्द्रिका, महानाद, कला तथा उन्मनी से जाना जाता है। उन्मनी कोश में पहुँचकर जीव आवागमन के बंधन से मुक्त हो जाता है। स्वाधीन संभव में या परमेश्वरी की इच्छा से देहधारण करने पर पूर्वजन्मों तथा आत्मस्वरूप की पूर्ण स्थिति बनी रहती है।

ये सभी कमलदल अधोन्मुखी रहते हैं तथा कुंडलिनी उत्थान जब होता है तभी ये ऊर्ध्वमुखी होते हैं। कुंडलिनी शक्ति की जागृति हठयोग या भावना योग से ही संभव है। इसमें नाड़ीजय करना होता है तथा आहार-विहार के विशेष नियमों का पालन करना होता है। लययोग का आश्रय लेना पड़ता है। कुंडलिनी शक्तियोग में साधक सदा आनंदावस्था में रहता है। उसे किसी मानवी संगिनी की आवश्यकता नहीं रहती है क्योंकि विद्युतप्रवाहरूपिणी सर्वसौंदर्यशालिनी, सर्वाकर्षा, सर्वसुखदायिनी-कुंडलिनी ही उसकी संगिनी है, ऐसे साधक के मार्ग का दिव्य भाव मार्ग कहते हैं और जो लौकिक साधक अपनी सहकर्मिणी के साथ श्री भगवती की उपासना करते हैं, वे वीरभावापन्न साधक हैं।

किसी भी प्रकार का साधक हो सूर्योदय तथा सूर्यास्त की संधिबेला में जब सुषुम्ना का प्रवाह रहता है, उस समय श्वासायाम कर बैठ जायें। यह अभ्यास निष्णात गुरु के समक्ष ही करना चाहिये। महामुद्रा, महाबंध लगाकर शक्ति चालिनी मुद्रा का आश्रय लेकर प्राणवायु को जागृत करें। प्राणवायु के जागृत होते ही कुंडलिनी जगती है। येन-केन-प्रकारेण यदि कुंडलिनी शक्ति जागृत कर ली गई तो उसका अति भयंकर परिणाम होता है। पिंड से पिंड का ग्रास हो जाता है। कुंडलिनी रूप पिंड देह रूप पिंड का भक्षण कर लेती है, कफ, पित्त और रस को भस्म करती हुई शरीर को निश्चेष्ट प्राणहीन कर देती है। हृदय का आकुंचन-प्रसारण तथा नाड़ी गति भी बंद हो जाती है जिसे कोई योगसिद्ध पुरुष ही पूर्वावस्था में ला सकता है।

☆☆☆

वेदोपनिषद् की अपौरुषेयता का तात्पर्य

वेदों की महत्ता तथा प्राचीनता में कोई विवाद नहीं है। वेद मनुष्य जाति की प्राचीनतम धरोहर हैं तथा मनुष्य ने सृष्टि के रहस्यों का जो उद्घाटन किया वेदों में सूत्र रूप में संकलित कर लिये गये तथा बाद में उपनिषदों के माध्यम से उनका भाष्य, तथा व्यवस्था सर्व सुलभ हुई। वेद विज्ञान की सर्वोच्च उपलब्धि है तथा ज्ञान का चरम विकास। व्यावहारिक संसार में जो भी दृश्य जगत् के रहस्य हैं उनपर हमारे ऋषियों ने हजारों वर्षों तक शोध तथा अनुसंधान कर जो निष्कर्ष दिये उसी के सूत्र रूप वेद हैं। ऐसा नहीं कि वेद में केवल धर्म और अध्यात्म की ही चर्चा है, वेदों की ऋचाओं में वे शाश्वत सूत्र रूप भी हैं जिनका ज्ञान उनकी भाषागत जटिलता के कारण आधुनिक वैज्ञानिकों की बुद्धि में नहीं आ रहे हैं, जिन्हें जानने के लिये वेद की भाषागत विशेषता पर अनवरत शोध चल रहा है। जब वेद की भाषागत गुत्थियां सुलझ जायेंगी तब उनके वैज्ञानिक महत्व का यथार्थ मूल्यांकन संभव हो सकेगा। फिर भी, अब तो यह निर्विवाद हो गया है कि मानवीय बुद्धि की सीमा के परे भी तथ्य वेदों में है जिन्हें जानने के लिये प्रज्ञा की आवश्यकता सूक्ष्मातिसूक्ष्म तथ्यों को विश्लेषण कर उन्हें बोधगम्य बनाने की ऋतंभरा प्रज्ञा की आवश्यकता है जो स्थूल बुद्धि के परे है। इसके लिए तपश्चर्या तथा कठोर संयम की साधना की आवश्यकता है जो आज के मनुष्य में दुर्लभ है। वेदों के जो भी ऋषि हैं वे अपने युग के महानतम वैज्ञानिक तथा मूर्धन्य विद्वान थे और जिन्होंने एकान्त अरण्य में अपना अन्वेषण एवं शोध जारी रखा जिसका प्रतिफलन ऋचाओं के ज्ञान-सूत्र के रूप में हुआ। उनकी व्याख्या नहीं और वे शिष्य परंपरा से ही सहस्राब्दियों तक जीवन्त रहीं और आज भी अपने मूल रूप में विद्यमान हैं और इसी लिये वेद को श्रुति कहा गया। जब वैदिक संस्कृत का पूर्णरूपेण ज्ञान विद्वानों को हो जायेगा तब वेदों के रहस्य अनावृत हो जायेंगे और भारतीय ज्ञान मंजूषा की समृद्धि पर सारा जगत् विस्मय से भर जायेगा। वेदों की अनिर्वचनीयता से अभिभूत फ्रांसीसी दार्शनिक पुरोधा शापेनहावर ने विस्मय में भरकर लिखा है- ***"Almost super humen conceptions whose originalities can hardly be said to be mere men."*** आदि शंकराचार्य ने वेदों को स्वतः प्रकाश और स्वतः प्रमाण कहा है। इनमें जो उदात्त भाव से संपृक्त जो ऋचायें आईं हैं उनके साहित्यिक सौष्ठव के परे जो ज्ञान-विज्ञान की गुत्थियां गुंफित हुईं हैं वे इतनी अकल्पनीय एवं सुनिश्चित हैं कि किसी पुरुष विशेष या पुरुषों की रचना नहीं हो सकतीं हैं और इसीलिये वेदों को अपौरुषेय बताया गया है। यह ईश्वरीय ज्ञान है जो अपने आप में इतना पूर्ण एवं सुनिश्चित है जिसके लिये किसी अन्य प्रमाण की आवश्यता ही नहीं है। इसमें शृंखलित ज्ञान स्वतः प्रमाण हैं, यदि यहां किसी पुरुष विशेष की वाणी होती तो विकार युक्त होती, सीमित होती और उसके प्रमाण भी नहीं होते, किन्तु ऐसा नहीं है। अपनी तपश्चर्या एवं साधनाभूत ऋषियों ने ईश्वर की समीपता प्राप्त कर ईश्वर स्वरूप में स्थित होकर जिस तत्व को अनावृत किया वही ज्ञान है और वही वेद है। वेद ज्ञान स्वरूप हैं और ईश्वर ज्ञान ही है, अतएव वेद अपौरुषेय हैं, वे ईश्वर की वाणी हैं, वेदों से ज्ञान प्रकाशित है और ज्ञान से सत्य अनावृत हुआ। वेद के शिरो भाग को उपनिषद् कहते हैं। "उप" अर्थात् व्यवधान रहित "नि" अथात् संपूर्ण और "षद्" अर्थात् ज्ञान है। इस प्रकार उपनिषद् संपूर्ण ज्ञान का व्यवधान रहित संग्रह है। यह सर्वोत्तम ज्ञान है जो ज्ञेय से अभिन्न तथा देश, काल एवं वस्तु से परे परिपूर्ण ब्रह्म हैं। अतएव, वेद एवं उपनिषद् के विषय में कुछ कहने से पूर्व ज्ञान के स्वरूप को अच्छी तरह समझना होगा।

ज्ञान स्वतः प्रमाण होता है, परितः प्रमाण नहीं। किसी भी वस्तु का यथार्थ एवं अपस्थिति के लिये ज्ञान को ही आश्रित होना प्रड़ता है और इस संबंध में ज्ञान ही निर्णायक तत्व है। किसी भी विषय की स्थिति का निर्णय करने में ज्ञान ही अंतिम कारण होता है। विषय की सत्ता इन्द्रियों से, इन्द्रियों की मन से, मन की बुद्धि से, बुद्धि की

सत्ता आत्मा में तथा आत्मा की सत्ता का ज्ञान ज्ञान से ही संभव है। अज्ञान का अनुभव भी ज्ञान ही है; किन्तु ज्ञान को प्रमाणित करने के लिये ज्ञान से भिन्न पदार्थ की कल्पना करना भी संभव नहीं है। प्रकृति, प्रमाण तथा प्रमेय की त्रिपुटी ज्ञान के द्वारा ही प्रकाश्य है। इस त्रिपुटी के भाव तथा अभाव का प्रकाश भी ज्ञान ही है। त्रिपुटी में ज्ञान का अन्यव है और ज्ञान त्रिपुटी से पृथक है। इस लिये ज्ञान की सत्ता अखण्ड हैं। प्रमाणों से ज्ञान की सिद्धि संभव नहीं है तथा ज्ञान से ही समस्त प्रमाण, प्रमेय आदि व्यवहार सिद्ध होते हैं। ज्ञान कर्त्ता, करण, क्रिया एवं फल के निरपेक्ष है। इसे किसी की अपेक्षा नहीं है। कर्त्ता कोटि प्रयत्न से भी स्थाणु ज्ञान को पुरुष ज्ञान नहीं बना सकता। कर्त्ता जो भी मानना हो मान ले किन्तु शशक शृंग की तरह वह ज्ञान नहीं है। यह मात्र कर्त्ता के मन का विलास है। यह कर्त्ता की कृति है। जिसे वह स्वंय गढ़ता है और बाद में स्वतंत्र मान लेता है। ये मान्यतायें में प्रत्येक व्यक्ति की, समाज की, सम्प्रदाय की, जाति की तथा राष्ट्र की भिन्न-भिन्न होती हैं, किन्तु उसको भी प्रकाशित करने वाला ज्ञान ही है। स्थाणु को भिन्न-भिन्न मनुष्य भिन्न-भिन्न तरह से उपाधि विशेष मानकर भी सबका ज्ञान एक ही होगा कि वह स्थाणु है। पुरुष भेद से ज्ञान भेद नहीं हो सकता क्योंकि ज्ञान की रचना किसी पुरुष विशेष से कदापि संभव नहीं है, यहां तक कि ईश्वर भी ज्ञान कर्त्ता नहीं है, वह स्वयं ज्ञान स्वरूप है क्योंकि यदि उसे ज्ञान का कर्त्ता नहीं मान लिया जाये तो इसके पूर्व उसमें ज्ञान का अभाव भी स्वीकार करना पड़ेगा, और ज्ञान का अभाव किसी भी प्रमाण या अनुभव से सिद्ध नहीं किया जा सकता। वह प्रमाण या अनुभव भी ज्ञान स्वरूप ही होगा। इसलिये ज्ञान साधन-साध्य नहीं है, यह तो स्वयं सिद्ध है।

ज्ञान देश और काल की सीमा से रहित है। वह काल एवं देश की सीमा से अपरिछिन्न है। काल यदि सागर है तो उसकी धारा में ज्ञान का अविर्भाव एवं तिरोभाव हो सकता है, किन्तु इसके भिन्न-भिन्न अवयवों कालधाराओं का ज्ञान ही प्रकाशक होगा और प्रकाशगत भेद का आरोपण प्रकाशक पर लागू नहीं हो सकता। जैसे घटी-पलादि की भिन्नता को प्रकाशित करने का प्रकाश-भेद कल्पना से परे होना है वैसे ही कला का आदिरूप काल के अवयवों में भेद होने पर भी उनके प्रकाशक ज्ञान में भेद-कल्पना व्यर्थ है। वैसे काल खंड-खंड मालूम पड़ता हुआ भी अपने अविरल प्रवाह में अखंड है क्योंकि किसी काल में काल का अभाव कल्पना से परे है क्योंकि काल के अभाव की कल्पना भी काल वर्तमान है और काल के अभाव की कल्पना मिथ्या हो जायेगी। अतएव, निरमय काल तो ब्रह्म ही है और इस प्रकार ज्ञान-स्वरूप ही है। निश्चय काल में खंडभेद महज कल्पना की असंभाव्यता है क्योंकि उस खंड काल का अस्तिव भी नीरवभव काल में ही समाहित है। अभावरहित वस्तु नीरस होती है गुण तथा विभाजन विकारी सत्ता में ही संभव है, सांश का ही विभाजन संभव है। यह भूत, भविष्य, वर्तमान के रूप में काल खंड की हमारी अवधारणा है वह संविन्मात्र है। कोई भी संविन्मात्र वस्तु संवित् को सीमित अथवा परिछिन्न नहीं बना सकती। अतएव ज्ञान काल परिछिन्न भी नहीं है।

ज्ञान देश-परिछिन्न भी नहीं है। ज्ञान में काल परिछिन्नता की चर्चा में यह स्पष्ट हो चुका है कि वह जिस धारा या क्रम की संवित् हो वह कालनिष्ट नहीं है, संविन्नमात्र ही है। स्वप्न में अनेकानेक वर्षों की जो प्रतीती हो जाती है वे काल के अवयव नहीं हैं, संविद्रूप ही हैं। वैसे ही देशिक-दैर्ध्य-विस्तार की कल्पना भी संवित् ही है। दिशाओं के रूप में प्रतीयमान उत्तरादिदिशायें देश भेद देशनिष्ठ हैं और इस भेद का कारण ध्रुवादि नक्षत्र हैं। काल के समान ही देश का भी कहीं अभाव नहीं है, शून्य में भी नहीं क्योंकि शून्य भी-अभावरहित देश भी ब्रह्म हैं। पूर्वादि दिशाओं से जो दैर्ध्य विस्तार की परिकल्पना है वह भी वस्तुनिष्ठ नहीं है। वह भी संवित् मात्र है। स्वयं प्रकाश ज्ञान के द्वारा प्रकाशित देश भेद ज्ञान का भेदक नहीं हो सकता। अतएव ज्ञान देश-परिछिन्न नहीं है।

ज्ञान विषय परिछिन्न भी नहीं है। जब भी कोई विषय प्रकाशित होगा वह देश काल के सापेक्ष ही होगा। अपने आप को किसी काल और देश में प्रकाशित करेगा। इसी प्रकार विषय भेद के बिना देश-काल की भी प्रतीती असंभव है क्योंकि जब देश और काल के भेद ही काल्पनिक हैं तो उनके आश्रित विषय भी तो काल्पनिक हो होंगे। पृथक-पृथक प्रतीयमान विषय सन्मात्र ही हैं क्योंकि इन्हें

त्रिकालाबध्य सत्ता से भिन्न प्रमाणित नहीं किया जा सकता। यदि ये संभ्रान्त नहीं हैं तो ये नितांत असत् हैं, इनका कहीं कोई अस्तित्व नहीं है। एक साथ दोनों की परिकल्पना मिथ्या है। सत् और असत्, भाव और अभाव का संयोग तो कभी हो ही नहीं सकता। बिना देश-काल का भेद प्रमाणित किये सत्ता का भेद करना संभव नहीं है। सत्ता का परिमाण स्वीकृत करते ही उसकी पूर्वोत्तार अवस्था तथा क्रम की भी अपेक्षा होगी। इस प्रकार सत्ता की त्रिकाल बाध यता ही मिट जाती है और जो चिन्तन का विषय होगा वह शून्यवाद, क्षणिक विज्ञान वाद अथवा सर्वोच्छेदवाद का निरर्थक प्रसंग होगा। जो वस्तु एक अंश में विदीर्ण हो रही है अर्थात् एक अंश गतिक हो और दूसरा अंश स्थैतिक, तो वह दूसरे अंश में नित्य नहीं हो सकती। अंश भेद तो स्वयं में परिहास मूलक है तथा मिथ्या कल्पना है। इस असिद्ध स्थिति वाली सत्ता में विशेष भी उत्पन्न नहीं हो सकता। विषयों का उद्भव सत् से, असत् से या सदसत् से अथवा उनसे भिन्न किसी प्रकार संगत नहीं है। जिनकी उत्पत्ति, स्थिति और संहार ही असिद्ध है, जिनका स्वयं अपने अधिष्ठान में ही नितान्ताभाव असंभव है, ज्ञान के बिना जिस की कल्पना भी असंभव है, ऐसे विषयों के द्वारा ज्ञान को सीमा बद्ध नहीं किया जा सकता।

ज्ञान में ज्ञातृत्व और ज्ञेयत्व का भी पुट औपाधिक है, बोधगम्यता की सुगमता को लेकर है। देश-काल और वस्तु विशेष का निषेध हो जाने से ज्ञान से स्वतंत्र ज्ञाता भी अपने आप असिद्ध हो जाता है। ज्ञेय के बिना ज्ञातृत्व के व्यवहार की सिद्धि संभव नहीं। ज्ञाता और ज्ञेय सापेक्ष उपाधि है। दोनों को एक-दूसरे की अपेक्षा है; परन्तु ज्ञान इन दोनों से भिन्न निरपेक्ष है, स्वतः सिद्ध है। यदि ज्ञेयरूप विषय ज्ञान से पूर्व सिद्ध है तो यह एक परिकल्पना के सिवा कुछ भी नहीं है। अनुभव के बिना पदार्थ बोधगम्य नहीं हो सकता। यह जो भिन्न-भिन्न विषय और इनकी समष्टि ज्ञेय रूप से पृथक प्रतीत होती है, युक्तियुक्त नहीं है; क्योंकि तब इनकी स्थिति ज्ञान के बहिर्देश या अन्तर्देश में कहीं भी नहीं है। वैसे ज्ञान के बर्हिदेश तथा अन्तर्देश की बात भी नितान्त असंभव है क्योंकि ज्ञेय विषय को बहिर्देश में मानने पर उनके साथ ज्ञान का संबंध सिद्ध नहीं होता और यदि अन्तर्देश में माना जाये तो ज्ञान के साथ व्यापक-व्याप्य भाव संबंध स्वीकार करना पड़ेगा क्योंकि इस संबंध को मान लेने से ज्ञान को विषय का उपादान कारण स्वीकार करना पड़ेगा। ऐसा स्वीकार करते ही परिणाम की एक धारा अथवा क्रम को भी स्वीकार करना पड़ेगा। ऐसा तभी संभव है जब काल की क्षणिकता का आरोप उसके प्रकाशक ज्ञान पर किया जाये, किन्तु अध्यस्त के गुण दोष अधिष्ठान का स्पर्श नहीं कर सकते। काल निरपेक्ष ज्ञान में विषय की उपस्थिति के लिये एक क्षण अथवा भिन्न-भिन्न क्षण है ही नहीं। यह भी तब विचारणीय हो जायेगा कि विषय संपूर्ण ज्ञान में है अथवा ज्ञानांश में। ज्ञान में अंशता एवं पूर्णता का कोई प्रश्न हीं नहीं है, सब कल्पित हैं यदि कोई ज्ञान का परिणाम माने तो रूपांतन्तरण को भी मानना पड़ेगा और ऐसा मानते ही यह रूपान्तर भी ज्ञान स्वरूप होगा। ऐसी स्थिति में प्रथम रूप तथा द्वितीय रूप का भेद विचारहीनों के द्वारा कल्पित विवर्तवाद ही होगा। ज्ञेय विषय का निराकरण हो जाने पर ज्ञातृत्व की कल्पना का कोई कारण नहीं है।

ज्ञान हेतु फलात्मक भी नहीं है। उसका प्रादुर्भाव स्वीकार करते ही उसके प्रादुर्भाव के पूर्व की भी स्थिति बतानी पड़ेगी। परन्तु ज्ञान को चित्त ऐसा कहना भी संभव नहीं है अर्थात् ज्ञान जन्मरहित है। अन्तःकरण की शुद्ध स्थिति अथवा निर्विषयता से भी ज्ञान का उन्मेष नहीं होता, इससे विचार का प्रस्फुटन संभव है। विचार के द्वारा वृत्यात्मक ज्ञान परिपुष्ट होता है और दृढ़ होने पर वह अज्ञान नहीं, अज्ञान भ्रांति का निर्वत्तक होता है। प्रक्रिया ग्रंथों के अनुसार जो आधुनिक विज्ञान के शोध प्रबंध हैं यह वृत्यात्मक ज्ञान भी दूसरे क्षण नहीं रह जाता। यह क्षण सहित वृत्ति तथा स्वयं बाधित होता है और वह ज्ञान वृत्ति के निवृत्ति के उपरान्त भी रहे तो द्वैत बना ही रहता है। इसलिये हेतुता और फलता की कल्पना ही मिट जाती है। हेतुता और फलता कुछ है ही नहीं, जिनकी ज्ञान से निवृत्ति होती है। यह जगत की व्यवस्था के लिए कल्पित है। यह निवर्त्य-निवर्त्तक भाव की कल्पना अविचार है दशा में ही है। ज्ञानदृष्टि से हेतु फलात्मक भेद सर्वथा ही असिद्ध है इसीलिये क्षण-क्षण में विचारपूर्वक विज्ञान की निष्पत्तियों को मनीषियों ने अज्ञानमूलक ही माना है। ज्ञान में यथार्थ अयथार्थ तथा परोक्षापरोक्ष का भेद भी नहीं है। व्यवहार में

ही ऐसा काम चलाऊ अर्थ भेद लिया जाता है। वस्तुतः कल्पित विषयगत भेद ही ज्ञान पर आरोपित किए जाते हैं। ज्ञान की परिभाषा में आश्रयत्व, विषयत्व आदि भेद-रहित अद्वितीय चित्स्वरूप ज्ञान में यथार्थता और अपरोक्षता की कोई संभावना ही नहीं रहती। ज्ञान चिरन्तन तथा अबाध्य है। ज्ञान का कोई भी प्रतियोगी या विरोधी नहीं है। स्वंय अज्ञान का भी प्रकाशक ज्ञान ही है। संधिहीन होने के कारण ज्ञान एवं अज्ञान का भेद कल्पित है। ज्ञान की बाधा अज्ञान नहीं है। ज्ञान स्वरूप सत्, अक्षुण्ण एवं अखंड ज्ञान ही सत्ता स्वयं सिद्ध है।

ज्ञान अनिर्वचनीय है। जब हम किसी विषय का विवेचन करते हैं तो उसमें दृश्यता, अन्यता आदि का आरोपण करते हैं। कोई निर्वचनीय वस्तु द्वन्द्वता भाव से अक्रान्त ही होगी। इस लिये मन वाणी का विषय ही होगी। इस परिस्थिति में विषय-विषयी भाव भी अनिवार्य होगा। अनिवर्चनीयता का तात्पर्य बस इतना ही है, कि ज्ञान स्वरूप से भिन्न नहीं है। अंबाध्यता स्वयं प्रकाशता अपरिच्छिन्नता आदि जो लक्षण हैं वे अन्य पदार्थ में नहीं आ सकते। अनिवर्चनीय यह समस्त निर्वचनों का निषेधकर अभिसक्त स्वात्मा में ही विश्रान्ति प्राप्त करता है। जितना-जितना आत्म सामीप्य जिस-जिस वृत्ति में है वह उतना ही आत्म साक्षात्कार अथवा अज्ञान निवृत्ति का साधन है। इस प्रकार सत्य, अहिंसा, ध्यान, उपासना आदि ज्ञान के ही उपलक्षण हैं। आत्म सामीप्य ज्ञान स्वरूप आत्मा का उप लक्षण है। ज्ञान स्वरूप परमात्मा में कार्य कारण या भोक्ता भोग्य भेद भाव की कल्पना असत् है-

"न तस्य कश्चिज्जनिता न तस्य कार्यं न तदश्नाति कश्चन न तद्भाति किंचन" आदि वाक्यों से यही अभिप्राय है। इतना ही नहीं "न तु तद्द्वितीयमस्ति," "विकल्यो नहि वस्तु" इन श्रुतियों से अव्यारोपित भाषा का भी अपवाद कर देते हैं। "सद्विदं सर्वम्" "भक्ति चिद्विदं सर्वम् खल्विदं" इत्यादि श्रुतियां परमात्मा से भिन्न और कुछ नहीं हैं-इसका प्रतिपादन करती है। यह सब कारणत्व आदि का आरोप मुमुक्षुओं के हितार्थ अज्ञान निवृत्ति हेतु ही हैं। परन्तु आन्तरतत्व आदि का अभिप्राय भी ज्ञान स्वरूप आत्मा में ही पर्यवसित होता है। इद्रियों से परे पंच मात्रा, तन्मात्रा से परे मन-मन से परे बुद्धि-यही परत्व अथवा आत्मसमत्व की विश्रान्ति है। यही पराकाष्ठा और परागति है। यह आत्मा के एकता का पोषक है। उपनिषद्मय प्रक्रिया भी प्रशान्त आत्मा को ही लय की अवधि बतलाती है।

अपरिन्छेद्य रूप लक्षण के फलस्वरूप ही ज्ञान, आत्मा, ब्रह्म और विश्व आदि पर्यायवाची शब्दों में प्रयुक्त होते हैं। यथा "प्रज्ञान ब्रह्म", "अलमात्माब्रह्म", "ब्रह्मैवेदं विश्वमिदं वरिष्ठम", "सर्वं यदभमात्म", "अहमेवेदं सर्वं", "विज्ञानमानंदं ब्रह्म", आदि। गीता में "ज्ञानं ज्ञेयम" श्रीमद् भागवत् में विज्ञानमेक मुरूधेवविभाति", "दुर्गासप्तशती में", "एकैवाहं जगत्यत्रं" विष्णुपुराण में "ज्ञान स्वरूपमेव दुगर्जदेवत्" इत्यादि से उपर्युक्त अर्थ की ही पुष्टि होती है, अवान्तर वाक्य तथा महावाक्य दृश्य-द्रष्टा, त्वं, अहं द्रंदं सः आदि से प्रतीकरूप समस्त पद पदार्थ ज्ञान को अपरिच्छिन्न ब्रह्म ही निरूपित करते हैं। परिच्छेद्य सामान्यभावोपक्षित ब्रह्म तत्व में दृश्यता, अनेकता; परिणामिता अन्यता आदि का कथा प्रसंग-तत्व का ज्ञान नहीं है, तत्व रूप ज्ञान है इसका वेत्ता ब्रह्म का वेता नहीं ब्रह्म रूप वेत्ता है।

ज्ञान के इस तत्व निरूपण से वेद अथवा उपनिषद् की अपौरूषेयता का अभिप्राय अभिव्यक्त हो जाता है। ज्ञान ज्ञान ही है वह किसी पुरूष की भावना का, स्मृति का, अनुभूति का आश्रयी नहीं है। ज्ञान स्वयंप्रकाश, सर्वानुभव स्वरूप, सृष्टि-प्रलय, समाधि-निक्षेप आदि समस्त प्रतीयमान व्यवहारों का प्रकाशक, अखंड, अजन्मा एवं स्वतः प्रमाण है। यह कालनिरपेक्ष, देश तथा पदार्थ निरपेक्ष है, इसका किसी से कोई संबंध नहीं है। यह ज्ञान है, यह जानना है।

ऐसे ज्ञान के प्रतीपादक, अस्मर्यमाण। अनादि-सम्प्रदाय विच्छिेद से प्राप्त नित्यतानुपुर्वीक जो ग्रंथ विशेष है वह भी अपौरूषेय हैं। वह एकार्थक है, एकात्मक है, एक वाक्य है, उसके अवान्तर तात्पर्य में कोई भेद नहीं है। उपनिषद् वेद का शिरोभाग है। वह शाखा भेद से पृथक्-पृथक् प्रतीत होते हुए भी एक ही है। ज्ञान अद्वितीय है-यही वेदोपनिषद् की अपौरूषेयता का तात्पर्य भी है।

☆☆☆

असाध्य रोगों से मुक्ति एवं दीर्घायुष्य के लिए :

महामृत्युंजय मंत्र

भगवान शिव महेश्वर हैं, सर्वशक्तिमान महादेव हैं। आदिदेव महेश्वर के रूप में सर्वमान्य हैं। अभिप्सित वर देने के कारण तथा अत्यंत सरल पूजा विधि से प्रसन्न होने के कारण भगवान आशुतोष भी इन्हीं को कहा जाता है। देव, दनुज, गंधर्व, मनुज आदि सभी योनियों पर कृपा करने वाले शिव सबके आराध्य हैं। इनकी आराधना में किसी प्रकार का भेदभाव नहीं है। सृष्टि को अभीप्सित वैभव प्रदान करने वाले स्वयं अनिकेत दिगम्बर तथा अकिंचन हैं। स्वयं निस्पृह, त्यागी एवं वीतराग शिव अपने भक्तों को उनकी इच्छित कामना पूर्ण करने के कारण सभी संप्रदायों में विशेषरूपेण पूजित हैं। उनकी पूजा में भाव की ही प्रधानता है। बड़े-से-बड़े धनाधीश अनेकानेक उपचार से राजसी पूजा करते हैं; वहीं सर्वथा आडम्बर शून्य थोड़ा जल, विल्वपत्र, अक्षत, धूप-दीप व अल्योपचार से पूजाकर इनकी प्रसन्नता प्राप्त की जा सकती है। इतना भी क्यों, बस उनकी मूर्ति या शिवलिंग के समक्ष भावपूर्वक इनके मंत्र जप से भी ये मनोरथ पूर्ण कर देते हैं। निम्न मंत्रों से किसी का भी मनोयोगपूर्वक जपकर कृतार्थ हुआ जा सकता है -

नमः शिवाय

ॐ नमः शिवाय

ह्रीं ओं नमः शिवाय ह्रीं

ॐ ह्रीं ह्रौं नमः शिवाय

ॐ नमो भगवते दक्षिणामूर्त्तये मह्यं मेधां प्रयच्छ स्वाहा

इं क्षं मं औं अं

प्रौं ह्रीं ठः

ॐ नमो नीलकण्ठाय

उर्ध्व फट्

ॐ तत्पुरुषाय विद्महे महादेवाय धीमहि तन्नोरुद्र प्रचोदयात्

ॐ जूं सः (अमुकं) पालय पालय सः जूं ॐ

अपमृत्यु विनाश के लिए लघु मृत्युंजय नाम से प्रसिद्ध अंतिम मंत्र अत्यन्त प्रभावशाली तथा अमोघ है। असाध्य रोगग्रस्त रोगी या स्वयं को निरामय बनाए रखने के लिए इसका जप चामत्कारिक है।

मृत्युंजय नाम भी भगवान शिव का ही बहुश्रुत नाम है जिसके ध्यान से स्पष्ट हो जाता है कि भगवान् शिव की कृपा से मृत्यु पर भी विजय प्राप्त की जा सकती है।

हस्ताभ्यां कलशद्वयमृतस्सैराप्लावयन्तं शिरो,
द्वाभ्यां तौ दधतं मृगाक्षवलये द्वाभ्यां वहन्तं परम्।
अंकन्यस्तकरद्वयामृतघटं क्रैलासकान्तं शिवं,
स्वच्छाम्भोजजगतं नवेन्दु मुकुटं देवं त्रिनेत्रं भजे।।

अष्टभुज त्र्यम्बक के एक हाथ में अक्षमाला तथा दूसरे में मृगमुद्रा है। दो हाथ कलश थामे हुए हैं तथा दो हाथों से अमृतरस लेकर अपने मस्तक को आप्लावित कर रहे हैं। शेष दो हाथ उन्होनें अपनी गोद में रख लिए हैं जिनपर दो अमृतपूर्ण घट हैं। वे श्वेत पद्म पर विराजमान हैं तथा मुकुट पर बालचन्द्र सुशोभित हो रहा है। ललाट पर तीन नेत्रों से युक्त भगवान शिव की मैं वन्दना करता हूँ। जातिस्मर पुरुष संसार बंधन से मुक्त रहकर भी जीवों के कल्योणार्थ एकाधिक बार अवतरित होते हैं। इन्हें मृत्यु तथा प्राण तत्व पर विजय प्राप्त रहती है। मृत्यु इनकी वशवर्तिनी है। एक और भी भाव है अमृतत्व का कि एक ही भाव में स्थित योगी शरीर से शरीरान्तर में संचरण नहीं करते हैं। इसे ही नित्य सर्वगत, ज्ञानमय, आनंदमय भाव भी कहा जाता है। जिनकी जगत् का कल्याण करने की वासना भी नष्ट हो जाती है, वे सदा के लिए आनंद भाव में निमग्न हो जाते हैं। इन दोनों ही अमृतत्वभाव के अधिकारी भगवान् शिव हैं और अंक में स्थित दो अमृतकलश इसी का प्रतीक हैं। उक्त दोनों प्रकार के अमृतत्व अपने

भक्त की उपासना से प्रसन्न होकर उसे दे सकते हैं। भगवान् शिव दो हाथों से दो कलशों से अमृत रस से अपने मस्तक को आप्लावित कर रहे हैं का भाव है कि वे स्वयं अमृतरूप ही हैं। मध्य में विशुद्ध सत्व और दोनों पार्श्व में रज और तम यही ब्रह्म या परमात्मा का व्यवहारिक या जागतिक रूप है। रज और तम से निवृत्त मध्यस्थ सत्व भाव से परिपूर्ण हो जाते हैं वे ही जागतिक प्रपंच से मुक्त होकर अपरिवर्तनशील रह सकते हैं तथा मृत्यु उनका स्पर्श भी नहीं कर सकती। परिवर्तनशील 'मैं' के भीतर एक नित्य स्थिर 'मैं' भी जिसे जानकर परिवर्तनशील जगत् के साक्षीस्वरूप में स्थिर हुआ जा सकता है और यही भाव अमृत है। स्वयं परिवर्तनशील परिवर्तन को नहीं जान सकता क्योंकि मृत्यु से अमृत्यु का बोध संभव नहीं है। त्र्यंबक देव इन दो धाराओं को शुद्ध सत्वरूप अपने मस्तक पर साम्यावस्थापन्न कर रहे हैं। इस प्रकार जागतिक मृत्यु राज्य का अतिक्रमण एक भाव से अमर है।

सीवासिते सरिते यत्र संगते तत्रप्लुतासो दिवमुत्पतन्ति।
ये वै तत्वं विसृजन्ति धीरास्ते जनासो अमृतत्वं भजन्ते।।

यही आध्यात्मिक त्रिवेणी प्रयाग तीर्थ है। इसी का आधिभौतिक रूप बाह्य त्रिवेणी अथवा प्रयाग है।

यही भाव त्र्यंबक ध्यान से महामृत्युंजय मंत्र में परिलक्षित होता है। जिसका अनुष्ठान असाध्य रोगों के निर्मूलन अथवा दीर्घायुष्य प्राप्ति के लिए किया जाता है। भगवान् शिव का अभिषेक 'रुद्राध्याय' तथा मृत्युंजय से भारत के कोने-कोने में किया जाता है। इस महामंत्र के अर्थगांभीर्य की व्याख्या अपरिमित है तथापि इस पर किंचित् विचार कर लेना आवश्यक है क्योंकि बिना भाव परिपक्वता अशक्य बन जाती है।

यजुर्वेद संहिता में यह मंत्र इस प्रकार आया है -

त्र्यंबकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम्
उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीयमाऽमृतात्

यह रोगनाशक तथा शांतिदायक है। इसके जप से या अनुष्ठान से कठिन से कठिन रोग ग्रस्त मृत्युशैय्या पर पड़ा हुआ व्यक्ति रोग मुक्त शीघ्र हो जाता है। स्वयं के रोग या अनिष्ट निवृत्ति के लिए इसका जप किया जा सकता है। इसके आदि अंत में कतिपय बीजमंत्रों को लगाकर ही अनुष्ठान करने का प्रचलन है। सर्वाधिक प्रयुक्त महामृत्युंजय मंत्र इस प्रकार है -

ॐ हौं जूं सः। ॐ भूर्भुवः स्वः।
ॐ त्र्यंबकं यजामहे सुगन्धिंपुष्टिवर्धनम्।
उर्वारुकमिव बन्धनानमृत्योर्मुक्षीयमाऽमृतात्।
स्वः भुवः भूः ॐ। सः जूं हौं ॐ।

शिवलिंग का प्रतीक ॐकार है। यदि इसके ऊपर जलधार के प्रवाह पर अपनी दृष्टि निक्षिप्तकर, अपनी दृष्टि एकाग्रकर विश्वासपूर्वक महामृत्युंजय या लघुमृत्युंजय का जाप किया जाए तो व्यक्ति ध्यानावस्था में चला जाता है तथा उसका रोम-रोम एक अजीब-सी पुलक से आनन्दमय हो जाता है। सृष्टि के आदि मध्य और अन्त- तीनों 'हौं' 'जूं' से जप करता हुआ व्यक्ति श्री त्र्यम्बकेश्वर के प्रति अपने आपको समर्पित भाव से उपस्थित कर ले तो भगवान् त्र्यम्बकेश्वर की कृपारूपी सुरभि से आप्लावित होकर जापक में ऐसी स्फूर्ति जाग्रत होती है जिसका आध्यात्मिक प्रभाव सर्वत्र भासमान होने लगता है। परब्रह्म की 'एकोहं बहुस्याम्' की इच्छा के फलस्वरूप महाप्राण की अलौकिक गति प्रवाहित होती है। और सृष्टि के कण-कण में प्रवाहित होने लगती है। इसी महाप्राण का संकेताक्षर 'ह' से अभिव्यक्त होता है। प्रकृति की विकृति, पंचतन्मात्राओं का उद्भव, आकाश का गुण ध्वनि जब सृष्टि के प्रपंचात्मक स्वरूप के वहन करने में समर्थ हो जाए तो उस दृश्य का आभास 'औं' से होने लगता है। ज = जन्म, ॐ = उद्भव-विकास-विस्तार, ँ = ० = शून्य, प्रलय। इस प्रकार 'जूं' से सृष्टि की तीनों आवस्थाओं का बोध होता है। सः = विराट् पुरुष - जो प्रलय के बाद भी बना रहता है। कहा गया है- 'पुरुष सवेदं सर्वं यद्भूतं पंचभाव्यम्' के साथ 'यथापूर्वकल्पयत्'। पुरुष - विराट पुरुष की अनश्वरता सिद्ध होती है। भूर्भुवः स्वः यही त्रिलोकी सृष्टि है जिसका उपासक त्र्यंबकेश्वर के समक्ष जपयज्ञ में प्रवृत्त हुआ है और सहज ही अपुनरावृत्ति मुक्ति का अधिकारी हो जाता है।

भगवान् महामृत्युंजय के जप ध्यान से महामुनि मार्कण्डेय, राजा श्वेत आदि के यमपाश से मुक्त होने का

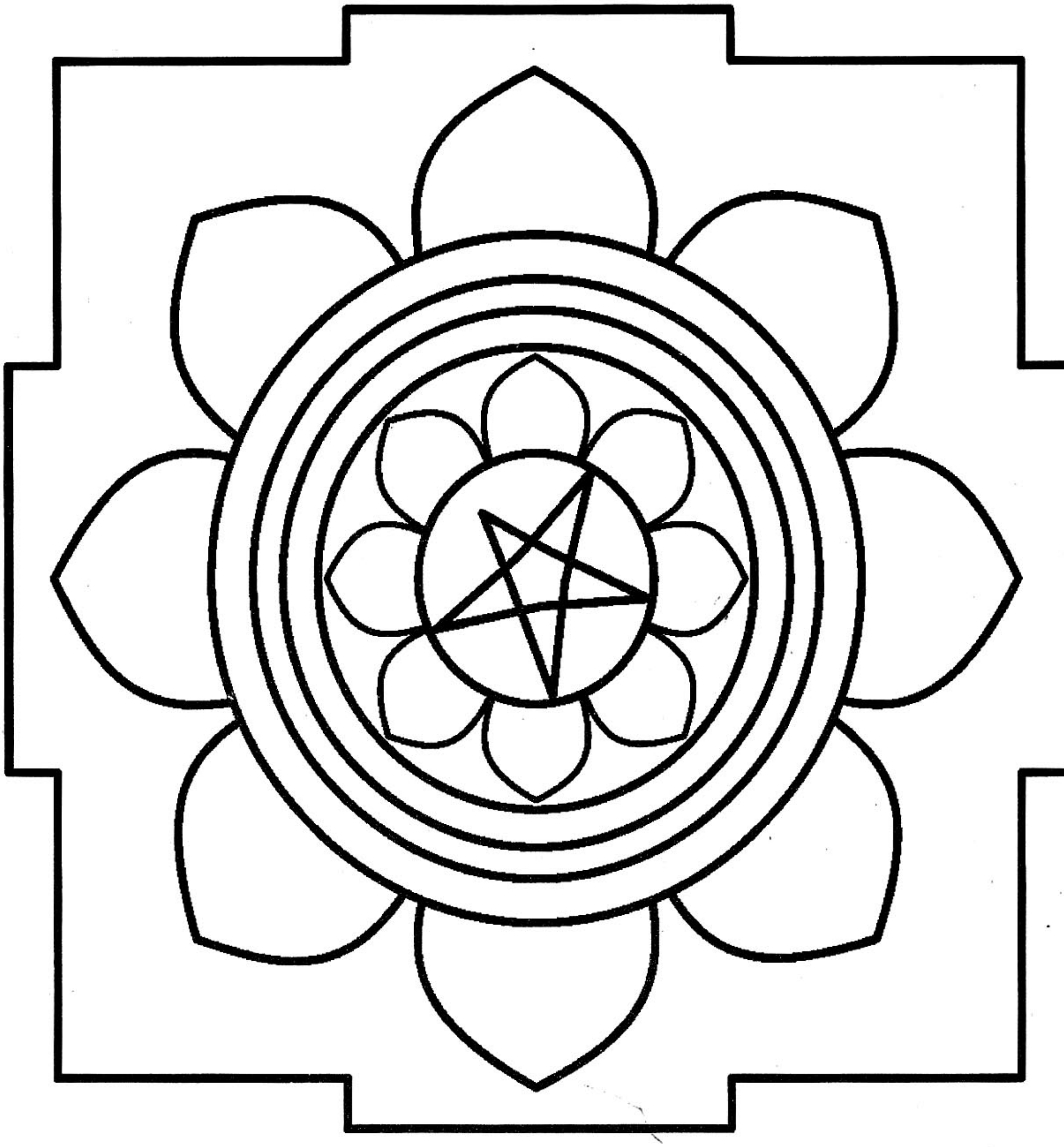

मृत्युंजय यंत्र

प्रसंग 'शिवपुराण', स्कन्दपुराण-काशी खंड, पद्मपुराण-उत्तरखंड, माघ महात्म्य से मिलता है, आयुर्वेद में मृत्युंजय योग का उल्लेख है। मृत्यु पर विजय दिलाने में समर्थ इन योगों को मृत्युंजय योग ही तो कहा जाएगा।

मृत्युर्विनिर्जितो यस्मात् तस्मान्मृत्यु जयः स्मृतः।

(रस० सारसंग्रह, अ० २ ज्वा० वि० ६)

मंत्रशास्त्र में वेदोक्त 'त्र्यम्बकं यजामहे०' (ऋ० ७/५६/१२, यजु० ३/६, अथर्व० १४/१/१६, तैत्ति० सं० १/८/६/१२, निरुक्त १४/३५) मंत्र को मृत्युंजय मंत्र से अभिहित किया गया है। पुराणों तथा विविध तंत्र एवं निबंध ग्रंथों में यथा मंत्र महोदधि, मंत्र महार्णव, शारदातिलक, अनुष्ठान प्रकाश तथा मृत्युंजय तंत्र, मृत्युंजय कल्प, मृत्युंजय पंचांग आदि में इस मंत्र के भाष्य, विधान, पटल, पद्धति, स्तोत्र आदि सर्वांग उपलब्ध हैं। शिव पुराण- सती खंड ३८/२१/४२ में इसका विस्तृत भाष्य है जहां इसे शुक्राचार्य

को मृत संजीवनी विद्या के नाम से बताया गया है।

मृतसंजीवनी मंत्रो मम सर्वोत्तमः स्मृतः

(शिवपुराण, रुद्रसंहिता, सतीखंड ३८/३०)

स्वयं शुक्राचार्य ने इसका उपदेश दधीचि को दिया है। 'विष्णुधर्मोत्तर पुराण' में तथा अन्यान्य ग्रंथों में कामना भेद से हवानि भेद का उल्लेख किया गया है। अन्यान्य काम्य प्रयोगों की इतनी विशद् सूची है कि यह अपने आप संपूर्ण तंत्र है। यथा-

त्र्यम्बकं यजामहेति होमः सर्वार्थ साधकः,
धत्तूर पुष्पं सधृतं तथा हुत्वा चतुष्पथे।
शून्ये शिवालये वापि शिवात् कामानवारतुयात्।।
हुत्वा च गुग्गुलं राम स्वयं पश्यति शंकरम्।

(विष्णुधर्म० २/१२५/२३-२४)

ऋग्विधान आदि में भी ऐसा ही वाच्य है। ब्रह्मवैवर्त्त पुराण- प्रकृति खंड के ५६वें अध्याय में वर्णन है कि भगवान् श्री कृष्ण ने अंगिरा की पत्नी को मृत्युंजय मंत्र दिया था। किसी पुराण कथा में यह भी वर्णित है कि भगवान् विष्णु ने शिव-कृपा हेतु उनकी पूजा सहस्त्र कमलों से करने का संकल्प लिया, बिना पूजन-समाप्ति के वे अपना आसन नहीं छोडेंगे। अन्त में एक कमल कम होने से वे विचलित हो गए; किन्तु उन्हें स्मरण हुआ कि उन्हें पुंडरीकाक्ष भी कहा जाता है और उन्होंने अपनी एक आंख बाण की नोंक से निकाल कर अपनी पूजा पूरी की। प्रसन्न होकर शिव ने उन्हें नेत्रदान, चक्रदान के अतिरिक्त असुरों के प्रहार से सुरक्षा हेतु उन्हें महामृत्युंजय मंत्र भी प्रदान किया।

तंत्रसार, शारदातिलक, मंत्रमहार्णव आदि मंत्र ग्रंथों में एक साथ ही त्र्यअक्षर, पंचाक्षर आदि कई मृत्युंजय मंत्रों का उल्लेख किया गया है जिसकी साधना के विविध आयामों का ज्ञान व अनुष्ठान हेतु साधक उन ग्रंथों का अवलोकन कर सकते हैं। हम यहां सर्वाधिक प्रचलित महामृत्युंजय जप के अनुष्ठान के बारे में संक्षिप्त रूप से लिख रहे हैं जिसका अनुष्ठान निर्विघ्न साधक समुदाय कर सकते हैं। अपनी कामना भेद से संकल्प लेना चाहिए। किसी पवित्र स्थान में स्नान, आचमन, प्राणायाम गणेश आदि देवों की पूजा-अर्चना के बाद तिथि वारादि का उल्लेख करते हुए संकल्प लेना चाहिए।

तत्पश्चात् हाथ में जल लेकर इस प्रकार न्यासादि करना चाहिए-

ॐ अस्य श्री महामृत्युंजय मंत्रस्य वामदेव कहोल

मंत्र	करन्यास	हृदयादिन्यास
१. ॐ हौं जूं सः भूर्भुवः स्वः त्र्यम्बकं ॐ नमो भगवते शूलपाणये स्वाहा	अंगुष्ठाभ्यां नमः (तर्जनी से अंगूठे का स्पर्श करें)	हृदयाय नमः (पांचों अंगुलियों से हृदय का स्पर्श करें)
२. ॐ ह्रौं अं जूं सः भूर्भुवः स्वः यजामहे ॐ नमो भगवते रुद्राय अष्टमूर्तयो नमः, मां जीवय।	तर्जनीभ्यां नमः (दोनों तर्जनी अंगुलियों से अंगूठों का स्पर्श करें)	शिरसे स्वाहा
३. ॐ हौं ॐ जूं सः भूर्भुवः स्वः सुगंधिं पुष्टिवर्धनं। ॐ नमो भगवते रुद्राय चन्द्रशिरसे जटिने स्वाहा।	मध्यमाभ्यां नमः	शिखायै वषट्
४. ॐ हौं जूं सः भूर्भुवः स्वः उर्वारुकमिव बंधनात्। ॐ नमो भगवते रुद्राय त्रिपुरान्तकायै ह्रां ह्रीं।	अनामिकाभ्यां नमः	कवचाय हुम्
५. ॐ हौं जूं सः भूर्भुवः स्वः मृत्योर्मुक्षीय ॐ नमो भगवते त्रिलोचनाय ऋग्यजुः साम मंत्राय	कनिष्ठिकाभ्यां नमः	नेत्र त्रयाय वौषट्
६. ॐ हौं जूं सः भूर्भुवः स्वः माऽमृतात्	करतलपृष्ठाभ्यां नमः	अस्त्राय फट्

वसिष्ठ ऋषयः, पंक्तिगायत्र्युष्णिगनुष्टुपछंदांसि, सदाशिव महामृत्युंजय रुद्रो देवता, ह्रीं शक्तिः, श्रीं बीजं महामृत्युंजय प्रीतये ममाभीष्टसिद्ध्यर्थे जपे विनियोगः।

-भूमि पर जल छोड़ दें। ममाभीष्ट के स्थान पर अपनी कामना बोलें। पुनः

वामदेवकहोलवसिष्ठऋषिभ्यो नमः मूर्धनि।
पंक्तिगायत्र्युष्णिगनुष्टुप छन्दभ्यो नमः मुखे।
सदाशिव महामृत्युंजय रुद्रदेवतायै नमः हृदि।
ह्रीं शक्तये नमः गुह्ये।
श्रीं बीजाय नमः पादयोः।

तत्पश्चात् निम्न मंत्रों से पहले अंगूठे आदि का स्पर्श करते हुए करन्यास करें फिर उन्हीं मंत्रों से हृदयादिन्यास करें।

ॐ नमो भगवते रुद्राय अग्नित्रयाय
उज्ज्वलज्वाल मां रक्ष रक्ष अघोराय

इस मंत्र में जप के पूर्व ध्यान परमावश्यक है। शिव पुराण के सतीखंड में यह ध्यान इस प्रकार है-

हस्तांभोजयुगस्थकुंभयुगलादुद्धृत्य तोयं शिरः
सिंचन्तं करयोयुगेन दधतं स्वांके सकुंभकौ करौ।
अक्षस्त्रकं मृगहस्तम्बुनगतं मूर्धस्य चन्द्रस्तवत्
पीयूषार्द्रतनुं भजे सगिरिजं त्र्यक्षं च मृत्युंजयम्।।

(सतीखंड : ३८/१४)

भगवान् मृत्युंजय अष्टभुज हैं। दो हाथों से दो घड़ों को उठाकर उसके नीचे के दो हाथों से जल अपने मस्तक

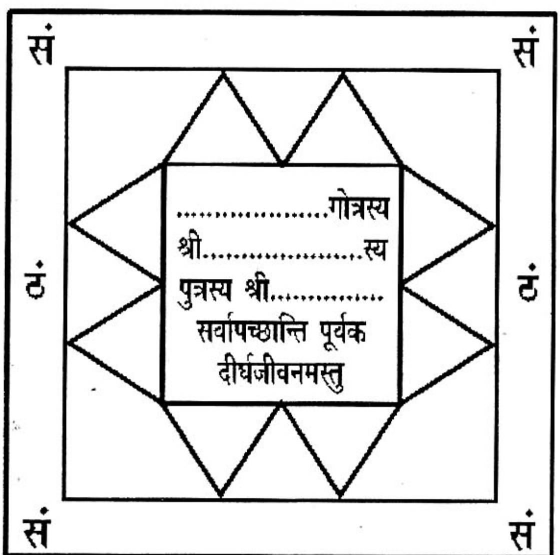

(महामृत्युंजय धारण यंत्र)

पर उड़ेल रहे हैं। सबसे नीचे के दो हाथों में रुद्राक्ष की माला तथा मृगीमुद्रा धारण किए हुए हैं। वे कमलासन पर बैठे हुए हैं तथा मूर्धस्थ चन्द्रमा से निरन्तर अमृत वर्षा से उनका शरीर भीगा हुआ है। वे त्रिनेत्र हैं तथा वामभाग में भगवती उमा विराजमान हैं तथा उन्होंने मृत्यु को सर्वथा जीत लिया है।

इस प्रकार का ध्यान करते हुए रुद्राक्ष की माला से जप करें। मंत्र इस प्रकार है-

मंत्र -

ॐ हौं जूं सः, ॐ भूर्भुवः स्वः। ॐ त्र्यम्बकं यजामहे सुगंधिंपुष्टिवर्धनम्। उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात्। स्वः भूः ॐ। सः जूं हौं ॐ।

इसका सवा लाख जप सर्वार्थ सिद्धिप्रद है। इसके बाद प्रार्थना करें-

गुह्यातिगुह्यगोप्ता त्वं गृहणास्मत्कृतं जपम्।
सिद्धिर्भवतु मे देव त्वत्प्रसादात् महेश्वरः।।
मृत्युंजय महारुद्र त्राहि मां शरणागतम्।
जन्ममृत्युजरारोगैः पीडितं कर्मबन्धनैः।।

जप के अंत में दशांश हवन उसका दशांश तर्पण फिर उसका दशांश मार्जन तथा ब्राह्मण भोजन आदि करना-कराना चाहिए।

सर्वव्याधिनाश के लिए लघु मृत्युंजय का ग्यारह लाख जप करें। मंत्र है -

ॐ जूं सः (अमुकं) पालय पालय सः जूं ॐ

दशांश हवन करने से सर्व प्रकार के रोगों का शमन होता है। इतना संभव न हो तो सवा लाख जप कर साढ़े बारह हजार हवन या जप करें तथा श्री महामृत्युंजय कवच यंत्र सिद्ध कर बांध दें। भोजपत्र पर अष्टगंध से यंत्र लिखकर गुग्गुल का धूप देकर चांदी या सोने के ताबीज में भरकर पुरुष की दायीं तथा स्त्री की बायीं बाजू में बांध दें। गोत्र, पिता का नाम, रोगी का नाम यथा स्थान लिख देना चाहिए।

❒❒❒

कामाख्याः गुह्यतम सिद्धपीठ

कामरूपं महापीठं सर्वकामं फलप्रदम्।
कलौ शीघ्रफलं देवि कामरूपेजपः स्मृतः।।

(कुब्जिका तंत्र - सप्तम् पटल)

कामाख्या का नाम आते ही हमें उस जन श्रुति का स्मरण होता है जिसके अनुसार 'कामरूकमच्छा' में रहने वाली योगिनियां मनुष्य का रूप परिवर्तन कर उसे भेड़ा, भैंस जैसे जानवरों में अथवा शुक-सारिका जैसे पंछियों में वदल देतीं हैं और अपने यहां बांध देती है या पिंजरे में बन्द कर देती हैं। वहां जो एक बार चला जाता है फिर लौटकर नहीं आता। कभी-कभार कोई आ भी जाता है तो योगिनी को धोखा देकर। वहां त्रिया राज्य है। इन सारी किंवदन्तियों से इतना ही स्पष्ट होता है कि वह एक गुह्यतम् दुर्गम भूखंड हे जो पर्वतों से घिरा है और वहां जाना आसान नहीं। जान हथेली पर लेकर लोग वहां जाते हैं, किन्तु दुर्गम होते हुए भी कामख्या धाम में पहुंचने के लिए चौड़ी कंकरीट की सड़क बनी हुई है और प्रतिदिन हज़ारों तीर्थ यात्री भगवती कामाख्या का दर्शन एवं पूजन करने देश के विभिन्न स्थानों से आते ही रहते हैं। वैसे जन श्रुतियां भी निराधार तथा निरर्थक नहीं हैं। जगह-जगह ऐसी प्राचीन पांडुलिपियां देखने में आती हैं जिनमें नाना प्रकार के यंत्र तथा उनकी प्रयोग विधियां दीं हुईं हैं, जिनका प्रयोग आभिचारिक क्रियाओं में तंत्र-मंत्र, जादू टोने, वशीकरण, मारण उच्चाटन आदि में किया जाता रहा है। साधनाभाव के कारण अब यह विद्या पुस्तकस्थही रह गयी है फिर भी इस विद्या के सीखने की इच्छा से भी देशान्तर से लोग आते ही रहते हैं और कुछ तो आज भी अपनी विद्या के अनोखे कारनामों के कारण अपने क्षेत्र में चर्चा के विषय बने हुए हैं। यद्यपि अब यहां पहुंचकर इन गुरूतांत्रिकों का पता नहीं चल पाता है फिर भी कुछ लोग हैं जो यहां की तांत्रिक निधि को पूर्वजों की थाती के समान संभाले हुए हैं। कामाख्या धाम के मुख्य पुजारी के विषय में मैंने सुना है कि वे तंत्र की गुह्यविद्या के प्रायोगिक जानकार हैं, किन्तु उनसे मिलकर अपनी जिज्ञासा का समाधान नहीं कर पाया। यह भी सिद्ध है कि कामाख्या धाम के चतुर्दिक प्रस्तारित अरण्य प्रदेशों, नदियां, पहाड़ और घनघोर जंगल इसे रहस्यात्मक तथा गुह्यतम बनाये हुए हैं। इनकी गिरिकन्दराओं में आज भी उच्च कोटि के तंत्र साधक का दर्शन कर पाना संभव है मगर इनके भीतर जाना भी जीवट और परम साहस का काम है। साधारण पर्यटकों के बूते के बाहर की बात है।

कालिका पुराण, चूड़ामणि तंत्र, बृहद्धर्मपुराण, शिवपुराण आदि विभिन्न तंत्र ग्रंथों तथा पुराणों में कामाख्या सिद्धपीठ को सर्वश्रेष्ठ घोषित किया गया है। तीर्थ चूडामणिस्तत्र योनिः पपातह।

तीरे ब्रह्मनदाख्यस्थ महायोग स्थलंहितत्।।

(बृ०पु० मध्यखंड-१०/३७)

अपनी प्रस्तर महामुद्रा में देवी सदा निवास करती है और इसका एक बार भी स्पर्श करने वाला व्यक्ति, निष्पाप हो जाता है। प्रायः सभी ग्रंथों में इसे सर्वश्रेष्ठ शक्तिपीठ कहे जाने का गौरव प्राप्त है। भगवान् विष्णु के सुदर्शन चक्र से खंडित भगवती सती के छिन्न-भिन्न शव के अंग जहां-जहां गिरे वह स्थान देवी के अधिष्ठान शक्तिपीठ के रूप में स्थापित हो गये हैं। इन सिद्ध पीठों की संख्या विभिन्न ग्रंथों में अलग-अलग है। प्रायः १०८ सिद्ध पीठ तथा ५४ उपपीठों का अधिकतम वर्णन है तथा ५१ महापीठ एवं २६ उपपीठों का न्यूनतम वर्णन है। देवी की महामुद्रा या योनि का पतन कामरूप में नीलांचल पर्वत पर हुआ इसलिये यह सर्वश्रेष्ठ शक्तिपीठ के रूप में मान्य हुआ। शिव-शक्ति यहां सर्वकाल में सन्नद्ध रहते हैं। ब्रह्मा की आज्ञा से उनके पुत्र दक्ष प्रजापति को देवी की उपासना कर उन्हें अपनी पुत्री के रूप में वरदान मांगने के लिये कहा था। उनका विवाह शिव से करने की आज्ञा दी। कालान्तर में इस घटना के बाद देव सभा में शिव ने दक्ष प्रजापति का अनजान वश आदर नहीं किया। किन्तु दक्ष प्रजापति ने इसे अपना अपमान समझकर इसका प्रतिशोध लेने की ठान ली और कालान्तर में एक यज्ञ का अनुष्ठान किया जिसमें भगवान् शिव एवं माता सती को निमंत्रित नहीं किया गया। नियत समय पर यज्ञ आरंभ किया गया। सूचना पाकर सती उस यज्ञ को देखने के लिये पिता के घर जाने का हठ करने लगीं और शिव ने बार-बार मना कर दिया। आज्ञा न मिलने पर भगवती क्रुद्ध हो गईं और दस महाविद्याओं के रूप में प्रकट हुईं। भगवान् शंकर पर इसका कुछ ऐसा प्रभाव पड़ा कि उन्हें आज्ञा देनी ही पड़ी। अनुमति पाकर शिव पार्षदों के साथ दक्ष प्रजापति के यज्ञ

स्थल पर उपस्थित हुईं। वहां शिव निंदा से क्षुब्ध होकर सती ने योगाग्नि उत्पन्न कर आत्मदाह कर लिया। इसका समाचार मिलते ही शंकर अत्यन्त क्रुद्ध होकर घोरमुद्रादि अपने गणों को यज्ञ विध्वंस करने के लिये भेज दिया तथा दक्ष का सिर काटने की भी आज्ञा दे दी। दक्ष के शिरोच्छेदन के उपरान्त दक्षपत्नी शोक से व्याकुल होकर शिव से अनुनय-विनय करने लगीं तब संतुष्ट होकर शिव ने दक्ष के धड़ से बकरे का सिर जोड़कर उसे पुनः जीवित कर दिया। परिचारकों को कैलाश भेजकर स्वयं सती का शव कंधे पर रख उन्मत होकर त्रैलोक्य में भ्रमण करने लगे। त्रिभुवन विनाश की आशंका से देवगण विष्णु को सारा समाचार देने गये तथा शिव के क्रोध को शांत करने की प्रार्थना भी की। सती का शव चिन्मय है जो शिव स्पर्श पाकर दिव्यतम हो गया अतएव भगवान् विष्णु ने जगत के कल्याणार्थ सती के शव को ५१ खण्डों में सुदर्शन चक्र से काट डाला। सती के शव के अंग जहां-जहां गिरे वे सभी स्थान महापीठों में परिणत हो गये। ये सभी महापीठ देव दुर्लभ तथा मुक्ति क्षेत्र के रूप में पृथ्वी पर विद्यमान हैं।

सिद्धपीठः समाख्याता देवानामपिदुर्लभाः।
महातीर्थानि तान्यासन् मुक्ति क्षेत्राणि भूतले।।
भूमौ पतित मात्रास्ते देव्याः अवयवाः किल।
जग्युः पाषाणतां शीघ्रं लोकानुग्रह हेतवे।।

(बृ० धर्मपुराण, मध्य खंड-१०/३१-३५)

कामरूप कामाख्या क्षेत्र में देवी का योनि मंडल गिरने से यह पीठ सर्वश्रेष्ठ है तथा तीर्थ चूड़ामणि है। ब्रह्मपुत्र नदी के तट पर उपस्थित यह तीर्थ विश्व कल्याण हेतु महायोग स्थल है। इसे कुब्जिका पीठ भी कहते हैं तथा देवी सर्वदा अदृश्य रूप में विद्यमान हैं। योनि मंडल गिरते ही नील वर्ण का हो गया, इस कारण इस पर्वत को नीलांचल या नीलशैल भी कहते हैं।

तस्मिस्तु कुब्जिका पीठे सत्य योनिमंडलम्।
पतितं तंत्र सा देवी महामाया व्यलीयत्।।
लीनायां योगनिद्रायां मपि पर्वत रूपिणी।
सनीलवर्णः शैलोऽभूत पतिते योनिमंडले।।

(कालिकापुराणः ६२/५८-५६)

भगवती सती का योनिमंडल नीलांचल पर गिरा और पत्थर बन गया जिसमें कामाख्या देवी नित्य निवास करती हैं। जो मनुष्य इसका स्पर्श करता है वह अमर होकर ब्रह्मलोक में निवास करता हुआ कालान्तर में मोक्ष प्राप्त कर लेता है। देवी भागवत महापुराण के अनुसार सभी देवता पर्वत रूप में वहां निवास करते हैं तथा अखिल भू-भाग को देवी स्वरूप समझा जाता है। कामाख्या योनिमंडल से श्रेष्ठ भू-भाग अन्यत्र नहीं है।

तत्रत्या देवताः सर्वा-पर्वतात्मकताः गताः।
पर्वतेषु वस्त्येव महन्त्यो देवता अपि।।
तत्रत्या पृथ्वी सर्वा देवी रूपा स्मृता बुधैः।
नातः परतरः स्थानं कामाख्या योनिमंडलात्।।

(देवी भागवत : ७/३८/१७-१८)

कालिकापुराण में कामाख्या विवरण से पता चलता है कि यह पर्वत पहले १०० योजन ऊंचा था। महामाया के योनि के आघात से पर्वत कंपित होकर पाताल में प्रवेश करने लगा। ब्रह्मा, विष्णु और शिव ने एक-एक शृंग को धारण कर लिया, फिर भी पर्वत-पाताल गामी होता ही रहा। भगवती महामाया ने तब निज आकर्षण शक्ति से इस पर्वत को स्थिर किया। अब इस पर्वत की ऊंचाई एक कोस मात्र रह गयी है। वहीं निखिलेश्वरी परमात्मा की प्रकृति है। जगदाम्बा कामाख्या देवी को ब्रह्मा, विष्णु और महेश ने धारण कर रखा है।

एकः समस्त जगतः प्रकृतिः सा यतस्ततः।
ब्रह्माविष्णुशिवैः देवैः धृतं सा जगतो प्रसूः।।

(का० पु० ६२/६६)

पूर्व में जहां भुवनेश्वरी सिद्ध पीठ है वह ब्रह्मपर्वत, मध्य में जहां महामाया पीठ है वह शिव पर्वत कहा जाता है तथा पश्चिम भाग में विष्णु या वराह पर्वत स्थित हैं। वराह पर्वत पर वाराह कुण्ड आज भी है तथा उसकी जल धारा आज भी दिखाई पड़ती है।

पौराणिक आख्यानों के आधार पर कामदेव को भगवान् विष्णु के अनुग्रह से अपना पूर्व रूप भस्मीभूत होने के पश्चात् यहीं प्राप्त हुआ था। अतः यह कामरूप कहलाया।

शंमुनेत्राग्निनिर्दग्धः कामो शंभोरनुग्रहात्।
यत्र रूपं यतः प्राप्य कामरूपं ततोऽभवत्।।

(का० पु० ५१/६७)

कामना के अनुरूप फल प्रदान करने के कारण भी कामरूप नाम से यह क्षेत्र प्रख्यात हुआ। कलियुग में यह स्थान विशेष रूप से जागृत है। योगिनी तंत्र के अनुसार कोई भी साधक या भक्त जिस किसी कामना से देवी की आराधना करता है, देवी प्रसन्न होकर अतिशीघ्र उसे वही फल प्रदान करती हैं।

कामरूपं देवी क्षेत्रं कुत्रापि तत् समनच।
अन्यत्र विरला देवी कामरूपे गृहे-गृहे।।

(योगतंत्र : ६/१५२) तथा

कृते कर्मणी सिध्येत् कामनाशु सुरेश्वरी।
ततो मर्त्याः कामरूपमिति रूपम कल्पयद्।।

भगवान् शिव के निर्देश पर भारत वर्ष के ईशान कोण में काम देव ने विश्वकर्मा से महामाया कामाख्या का मंदिर प्रस्तर से निर्मित कराया। विश्वकर्मा छद्म वेश में अपने कारीगरों के साथ मंदिर निर्माण में जुट गये। महामुद्रा के निकट पूर्व में लक्ष्मी व सरस्वती पीठ, उत्तर में ताम्रकुंड को देख विश्वकर्मा अति प्रसन्न हुए तथा चारों कोणों को लेकर एक विचित्र एवं विशाल मंदिर बना डाला। मंदिर की दीवारों पर चौंसठयोगिनियों की मूर्तियां तथा अष्टादश भैरवों की मूर्तियां उत्कीर्ण की गई हैं। कामदेव ने इसे आनन्दाख्या नाम से प्रचारित किया। आज उक्त मंदिर के नीचे का भाग ही शेष रहा गया है। कामदेव ने ही सर्वप्रथम इस महामुद्रा पीठ का महात्म्य जगत् में प्रसिद्ध किया जिस कारण इसे मनोभवगुहा भी कहते हैं।

कामरूप अत्यंत ही प्राचीन स्थान है जो भारत के ईशान कोण में अवस्थित है। इसका प्राचीन नाम धर्मारण्य था जिसका कोई भी इतिहास संप्रति प्राप्त नहीं होता है। रामायण, महाभारत ग्रंथों तथा पुराणों में इस कामरूप क्षेत्र का अनेकशः उल्लेख हुआ है। कामरूप क्षेत्र के विस्तार के संबंध में योगिनी तंत्र तथा कालिका पुराण में विशद् वर्णन आया है। महाकवि कालिदास ने भी रघुवंश महाकाव्य में राजा रघु के दिग्विजय वर्णन में कामरूप राज्य का अत्यंत गौरव के साथ वर्णन किया है। इसकी लंबाई-चौड़ाई क्रमशः सौ योजन तथा तीस योजन पर्यन्त है।

करतोयां समाश्रित्य, यावत् दिवकरवासिनीम्।
उतरस्यां कंचगिरिः करतोया तुपश्चिमे।।
तीर्थश्रेष्टादिक्षु नदी, पूर्वस्यां गिरिकन्यके।
दक्षिणस्य ब्रह्मपुत्रस्य लाक्षायाः संगमावधिः।
कामरूप इति ख्यातः सर्वशास्त्रेषु निश्चितः।।
त्रिंशद्योजन विस्तीर्णं दीघैण शतयोजनं।
कामरूपं विजानीहि त्रिकोणाकार मुत्तमम्।।

(यो०तं०-११/१७-२१)

कालिकापुराण में भी ऐसा ही वर्णन है। यह त्रिकोणाकार कृष्णवर्ण क्षेत्र है जिसके चारों ओर पर्वत तथा सैकड़ों नदियां प्रवाहित हैं।

करतोयानदीपूर्वं यावत् दिवकर वासिनीम्।
त्रिंशत्योजन विस्तीर्णं योजनैकशतायेतम्।
त्रिकोणं कृष्णवर्णं च प्रसूताचलपूरितम्।
नदीशत समायुक्तं कामरूपै प्रकीर्तिम्।।

(का० पु० २१/६५-६६)

अतएव, प्राचीन काल से ही यह क्षेत्र योगियों तथा ऋषियों का निवास स्थान रहा है। महामुनि वशिष्ठ, गोकर्ण तथा विष्णु के अवतार कपिल आदि मुनियों के आन्रभ कामरूप में थे। योगिनी तंत्र के अनुसार कामरूप देश चार भागों में विभक्त था-

(१) **कामपीठ--** देवी कामाख्या का मंदिर जहां अवस्थित है उसी स्थान का नाम कामपीठ है। स्वर्णकोष तथा रूपिका नदी के मध्य भाग में कामपीठ है। स्वर्णकोष नदी वर्तमान ग्वालपाड़ा जिले में तथा रूपिका या रूपही नदी कामरूप जिले में पड़ता है।

(२) **रत्नपीठ--** जहां जल्पेश्वर शिव का मंदिर है। करतोया तथा रत्नकोष नदी के बीच में स्थित भू-भाग रत्न पीठ है। करतोया नदी रंगपुर बगूड़ा तथा पावना ज़िलों से होकर बहती है।

(३) **स्वर्ण पीठ--** चम्पावती नदी के भू-भाग का नाम स्वर्ण पीठ या भद्रपीठ है। रूपिका और भैरवी नदी के मध्य क्षेत्र को ही स्वर्ण पीठ कहते हैं। भैरवी नदी तेजपुर से बहती है।

(४) **सौभार पीठ--** दिवकरवासिनी अब जहां अवस्थित हैं उसका नाम सौभार पीठ है। भैरव एवं दिकाई नदी के मध्यस्थ भू-भाग को सौभार पीठ नाम से जाना जाता है।

वर्तमान समय में कामरूप आसाम प्रदेश का एक ज़िला है जिसका नैसर्गिक पर्वतीय सौंदर्य दर्शनीय है तथा अति मनोहर है। ब्रह्मपुत्र ने इसे दो भागों में विभाजित कर दिया है।

प्राचीन काल से दानव, असुर, पाल तथा सेन आदि वंशों के राजाओं के अधीन कामरूप देश था। पुराणों के अनुसार विदर्भ नरेश भी यहां के राजा थे जिनकी पुत्री रूक्मिणी का अपहरण कर श्री कृष्ण ने विवाह किया था। वर्तमान दो जिले के अंतर्गत तेजपुर केनकर शोणितपुर नामक नगर बलि के पौत्र वाणासुर की राजधानी थी। प्राग्ज्योतिषपुर के राजा नरकासुर इनका मित्र था। वाणासुर की रूपसी पुत्री ऊषा से श्री कृष्ण के पौत्र अनिरुद्ध का विवाह हो गया। इसके पश्चात् इस स्थान पर कछाढ़ी, चुरियां आदि पहाड़ी जातियों का राज्य रहा। अन्ततः सन् १७०० ई में अहोम तथा कोच राजाओं ने कामरूप को दो भागों में विभाजित कर राज्य किया। सन् १८२५ ई० में अंग्रेज़ों ने बरमियों को हराकर कामरूप पर अपना आधिपत्य स्थापित किया। अंग्रेजों के पूर्व यह कठिन प्रदेश सर्वथा दुर्गम था तथा कुछ ही तीर्थ यात्री यहां पहुँच पाते थे।

कामाख्या धाम का कई बार लोप हुआ और कई बार इसका पुनरुद्धार किया गया। वर्तमान युग में इसके पुनरुद्धार का श्रेय हैहयवंशी राजा विश्व सिंह को जाता है। महाराज विश्वसिंह ने अपनी राजधानी चिकना से हटाकर कूच बिहार में स्थापित किया। युद्ध प्रिय राजा ने छोटे-बड़े अनेक राज्यों पर अधिकार कर लिया। युद्ध यात्रा के समय कामाख्या मंदिर के ध्वंसाशेष जो तत्कालीन वनवासियों की दृष्टि में परम पवित्र पुण्य क्षेत्र था। लुप्त हो गया था। अब कभी संकट तथा विपत्तियां आतीं स्थानीय वनवासी पशु-पक्षी की बलि देकर उस स्तूप की पूजा करते थे। पीठ- स्तूप से अविरल सुस्वादु जल की धारा प्रवाहित होती थी। उक्त स्थान का देवी का जाग्रत स्थान समझ जंगली आदिवासी वहां देवी की पूजा-अर्चना किया करते थे। महाराज विश्वसिंह और उनके भाई शिवसिंह अहोम राजा के साथ युद्ध करते-करते अपने सैनिकों से बिछुड़कर भटकते हुए किसी दैवी प्रेरणा से नरकासुर निर्मित पथ से उस स्तूप के निकट एक बट वृक्ष की छाया में विश्राम करने लगे, तभी उनके नेत्रों में दिव्य ज्योति आ गई। उन्होंने देखा कि कोई वृद्धा स्त्री उस बट वृक्ष के नीचे पूजा कर रही है। दोनों भाइयों ने प्यास बुझाने के लिये उस वृद्धा से आदर पूर्वक जल-याचना की। वृद्धा ने उन्हें स्तूप की ओर जाने का संकेत दिया। स्थानीय लोगों से महाराज को मालूम हुआ कि वह स्तूप देवी का जाग्रत स्थान है, तो उन्होंने साष्टांग निवेदन करते हुए देवी की पूजा-अर्चना की। अपने सैनिकों के मिल जाने पर वहां स्वर्ण मंदिर बनाकर उन्होंने पुनः देवी की पूजा-अर्चना का संकल्प लिया। किसी चमत्कार की तरह शीघ्र ही राजा का सैन्य दल उनसे मिला तब देवी की शक्ति का अनुमान कर राजा ने वृद्धा से देवी की पूजा-अर्चना का विधि-विधान पूछा। उसने बताया कि अलंकारादि चढ़ाकर पूजा की जाती है। एक और किवंदन्ति है कि अपने हीरे की अंगूठी जिनपर उसका नाम खुदा था स्तूप के जल में डाल दिया तथा तीन खंड घड़े के टुकड़े भी डाल कर कामना की कि सारी चीजें अपने देश जाने के पश्चात् काशी में गंगा स्नान करने जायेंगे तो यदि ये सारी वस्तुएं मिल जायेंगी तो भगवती की शक्ति का प्रत्यक्ष अनुमान उन्हें हो जायेगा। इस घटना को राजा भूल गये। अनेक वर्षों के बाद जब वे काशी में गंगा स्नान कर तर्पण कर रहे थे तो ये ठीकरे(घड़े के टुकड़े) उन्हें तीन बार अंजलि में चुभे। राजा ने आश्चर्य चकित होकर देखा कि तीन खंड ठीकरे तथा हीरे की अंगूठी उनकी अंजुली में आ गये हैं। घटना का उन्हें स्मरण हो आया और वे अपने राज्य में लौटने पर अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार प्रस्तर का मंदिर निर्मित कराने लगे, किन्तु दिन भर का मंदिर दूसरे दिन गिर जाता। देवी ने स्वप्न में उन्हें चेताया कि स्वर्ण मंदिर बनाने की प्रतिज्ञा की थी तुमने, फिर राजा के अनुनय-विनय तथा क्षमायाचना पर भगवती ने दयालु होकर आदेश दिया कि प्रत्येक ईंट पर एक रत्ती सोना देकर मंदिर बनाओ। देवी के आदेशानुसार भव्य मंदिर बनकर तैयार हो गया। उस समय उस जनपद में बसतरिया समाज के ब्राह्मण ही सर्वश्रेष्ठ समझे जाते थे। उन्होंने उनमें से ज्ञानी एवं धर्म निष्ठ ब्राह्मणों को सम्मान पूर्वक बुलाकर मंदिर की व्यवस्था उन्हें सौंप दी। देवी का स्थान एक बार फिर देश-देशान्तर में प्रख्यात हो गया।

सन् १५३४ ई० में विश्वसिंह के पुत्र नरनारायण का राज्याभिषेक हुआ और अपने छोटे भाई शुक्लध्वज को युवराज घोषित कर राजा ने उन्हें अपना प्रधान सेनापति नियुक्त किया। दोनों भाई राज-काज देखने लगे। दोनों भाइयों ने अपने शत्रु अहोम राजा खोर को परास्त कर असम के अन्यान्य राजाओं को जीतकर चतुर्दिक अपनी विजय पताका फहराई। बंग देश को अपनी सीमा में मिलाने के लिये जब विश्वसिंह युद्धरत थे तभी विख्यात् पठान सेनापति काला पहाड़ ने १५५३ ई० में कामरूप पर आक्रमण किया। उसका उद्देश्य विजय प्राप्ति से अधिक हिंदू धर्म को अपवित्र एवं नष्ट करने का था। उसने मंदिर के ऊपरी भाग तथा दीवारों पर उत्कीर्ण मूर्तियों को नष्ट कर डाला। युद्ध में अत्यन्त व्यस्त रहने के कारण महाराज नरनारायण के लिये उस समय काला पहाड़ को रोकना संभव न था। युद्ध में चिल्लाराम बंदी बना लिये गये। देवी ने स्वप्न में संकेत दिया कि मंदिर की दुर्व्यवस्था पर ध्यान न देने के कारण ऐसा हुआ है। कल नवाब की माता को सर्प डंसेगा और तुम जाकर उन्हें आरोग्य कर दोगे। ऐसा ही हुआ देश-देशान्तर के वैद्य तथा चिकित्सक सर्प-विष उतारने में असमर्थ रहे। चिल्लाराम ने महामाया कामाख्या की कृपा से नवाब की माता को विष-मुक्त कर प्राण दान दिया। गौड़ देश से लौट कर चिलाराम ने संपूर्ण वृतान्त लोगों को बताया। महाराज नरनारायण और चिल्लाराम ने मंदिर के भग्न ऊपरिभाग को बनवा दिया। प्रारंभ में मंदिर निर्माण का काम महतूराम वैश्य को सौंपा गया जो सम्पत्ति हरण के अभियोग में बंदी बना लिया गया। फिर यह कार्य सेनापति भेकाकदुम को सौंपा गया। १५५५ से १५६५ तक

दस वर्षों में भव्य मंदिर का निर्माण हो गया। निर्माण कार्य समाप्त होने पर मंदिर में देव विग्रहों की प्रतिष्ठादि समारोह सम्पन्न करने के लिये महाराज महारानी भानुमति अन्तःपुर की अन्य महिलायें तथा अपने अनुज शुक्लध्वज तथा उनकी पत्नी चन्द्रप्रभा के साथ देवी की महापूजा सम्पन्न की। देवी की नित्य पूजा हेतु अनेक सेवक तथा पुजारी नियुक्त किये गये।

एक और प्राचीन जनश्रुति है कि केन्दुकलाई नामक पुजारी अत्यन्त ही सिद्ध पुरूष थे और देवी की पूजा-अर्चना में वे लीन रहते थे। भगवती कामाख्या नित्य ही उस ब्राह्मण को दर्शन देती थीं। धीरे-धीरे यह बात राजा के कानों तक पहुंची। योगीन्द्र-मुनिन्द्रादि जिस अचिन्त्य महाशक्ति को देखने के लिये कठोर तप करते हैं उनकी चेतन-विग्रह के दर्शन की लालसा से महाराजा कूचबिहार से आकर उस ब्राह्मण से कातर प्रार्थना करने लगे। ब्राह्मण किसी गंभीर अनिष्ट की आशंका से व्याकुल हो उठे तथा कहा कि किसी छल का आश्रय लेकर जगदम्बा का दर्शन उचित नहीं है। परमभक्ति के साथ आप अर्चना करें तो आपको दर्शन हो जायेंगें। राजहठ के सामने ब्राह्मण को झुकना पड़ा और उन्होंने आरती के समय मंदिर के किसी छिद्र से देवी दर्शन की युक्ति बताई। नित्य प्रति की तरह ब्राह्मण अश्रुविगलित नेत्रों से देवी का नृत्य-दर्शन करने लगे। ब्राह्मण के निर्देशानुसार नरनारायण भोग मूर्ति के उत्तर भाग के झरोखे से झांकने लगे। मंदिर के भीतर दिव्य आंखों का प्रकाश राजा की आंखों को चौंधिया गया। महामाया सर्वज्ञा ने इस कपट आचरण के कारण क्रुद्ध हो ब्राह्मण के सिर पर प्रहार किया तथा उसे पाषाण मूर्तिमान बना दिया। महाराज नरनारायण को क्रुद्ध हो आदेश दिया तू अभी नीलांचल त्याग कर चला जा। तू या तेरे वंश का कोई भी इस महातीर्थ का दर्शन नहीं कर पायेगा। इस पर्वत को देखते ही तेरा वंश लुप्त हो जायेगा एवं भयंकर दुर्दशा झेलेगा।तब से आज तक कूच बिहार के राजा का कोई वंशज इस तीर्थ में नहीं आया। नरनारायण के पतन के बाद अहोम राजाओं ने पुनः इस मंदिर का जीर्णोद्धार किया। इसके अतिरिक्त उन्होंने यहां दश महाविद्याओं के मंदिर तथा शिव मंदिर का भी संस्कार कराया। देव-देवियों के मंदिर में सेवा पूजादि के लिये तथा उनके सेवक पुजारियों के भरण-पोषण के लिये पर्याप्त करमुक्त भूमि दान में दी। अहोम राजाओं ने हिन्दू धर्म स्वीकार कर देव-देवियों के मंदिर में सेवा-पूजादि के जिन-जिन नियमों का प्रवर्तन किया, वे आज भी चले आ रहे हैं।अहोम राजा रुद्रशक्ति सिंह ने शक्ति मंत्र से दीक्षित होने के लिये बंगाल के शान्ति पुर ज़िले के शिमला ग्राम के निवासी सिद्ध साधक कृष्णानंद महाचार्य को बुलाया। किसी कारण दीक्षा पूर्व ही उनका देहान्त हो गया। तब उनके पुत्र शिव सिंह तथा उनकी धर्मपत्नी फूलेश्वरी देवी ने रूद्रसिंह के आज्ञानुसार शक्ति दीक्षा ली। कितने मंदिर बालाहर ध्वस्त हो गये जिनका पुननिर्माण तथा संस्कार दरभंगा के महाराजाधिराज स्व० श्री रामेश्वर सिंह जी ने कराया।

कामाख्या दर्शन :-

आरोहण विधि के बारे में लिखा है

पूर्वेतु धनकास्तु राज्य कनकामस्तु पश्चिमें।
उत्तरे मुक्ति कामस्तु दक्षिणे मरणं ध्रुवम्।।

गृहस्थ भक्त को पूर्व पथ से पर्वत पर आरोहण करना चाहिये। पश्चिम द्वार से आरोहण राज्य प्राप्ति के लिये है। उत्तर दिशा से आरोहण मुक्ति कामियों के लिये है तथा दक्षिण दिशा से आरोहण निसिद्ध है यह मृत्यु दायिनी है। आरोहण करते समय इस मंत्र का तीन बार श्रद्धापूर्वक जप करना चाहिये-

नील शैल गिरि श्रेष्ठ त्रिमूर्ति रूप धारक।
तवाहं शरणं यातः पादस्पर्श क्षमस्वमे।।

पहले नीलांचल पर आरोहण हेतु नरकासुर ने चारों दिशाओं से चार मार्ग बनाए, किन्तु उत्तर और पश्चिम के मार्ग दुर्गम होने के कारण लुप्त हो गये। उत्तर दिशा के मार्ग से स्वर्ग द्वार प्रारंभ होता है तथा पश्चिम दिशा का मार्ग हनुमत द्वार है। हनुमान जी की प्रस्तर प्रतिमा साक्षी स्वरूप विद्यमान है। प्राचीन काल में व्यापारीगण अपनी नौका बांधकर इन सड़कों से कामाख्या दर्शन करने जाते थे। आजकल हनुमंत द्वार के निकट सरकार द्वारा पेयजल संग्रह कर पहाड़ पर पहुंचाया जाता है तथा उसके निकट भारत सरकार ने एक प्रशस्त पथ का निर्माण कराया है जिस पर मोटर गाड़ियां चलती हैं। यह मार्ग पहाड़ो से घूमता-घामता कामाख्या मंदिर तक पहुंचा है तथा वहां से भुवनेश्वरी शृंग तक गया है। निजी वाहन या टैक्सी से यात्री इस मार्ग से मंदिर तक पहुंचते हैं। दूसरा, गौहाटी स्टेशन से उतर कर सीधे तीन मील की दूरी पर दुर्गा सरोवर देखते हुए वहां से पूर्व मार्ग से कामाख्या धाम पहुंचें। बंगाल तथा सुदूर पश्चिम प्रांतों से आने वाले यात्री आसाम लिंक रेल मार्ग से अमीन गांव स्टेशन पर उतरते हैं तथा ब्रह्मपुत्र नदी पारकर वहां पहुंचते हैं। इसमें यात्रियों

की असुविधा देखकर भारत सरकार ने ब्रह्मपुत्र नदी पर ४२५८ फुट लंबा पुल निर्मित करा दिया है। जल मार्ग या रेल मार्ग से न्यूजालुक बाड़ी स्टेशन पर उतरकर टैक्सी या अन्य यान से मंदिर तक पहुंचा जा सकता है। गौहाटी के निकट हवाई पट्टी है। वहां से भी माता के दर्शनार्थ यात्री आते हैं। पूर्व दिशा का मार्ग प्रस्तर निर्मित तथा प्रशस्त है। उसके मध्यमार्ग में सिद्ध गणेश तथा अग्नि वैताल नामक द्वार पालों की मूर्तियां हैं। रास्ते के दोनों ओर पंक्तिबद्ध गुलाब के फूलों की कतार लगी हुई है तथा कुसुमाच्छादित वृक्षों की शीतल छाया में मनमोहक प्राकृतिक सौंदर्य का पान करते हुए यात्रियों को विश्रान्ति का अनुभव कम होता है। पहाड़ से चढ़ते-उतरते गति तथा शरीर को नियंत्रित रखना ही अच्छा होता है।

प्रत्येक तीर्थयात्री का यह कर्तव्य है कि वह अपने वंश के तीर्थ पुरोहित (पंडित) की खोज कर उनसे मिले तथा उन्हें भोज्य सामग्री का दक्षिणादि देकर उनकी अनुमति से देवी-दर्शन, भोग एवं पूजादिक कार्य सम्पन्न करे फिर तीर्थ पुरोहित के यहां प्रसाद ग्रहण करे। अब सामग्री के बदले नगद धनराशि दी जाती है। तीर्थ यात्रा का उद्देश्य लेकर कामाख्या धाम के विषय में कहा गया है-

तीर्थ यात्रा समासाध, यदेकोऽयत्र गच्छति।
पदे-पदे अश्वमेघस्य, फलं प्राप्नोमि मानवः।।

(यो० तं० ११/२०)

इस तीर्थ में आकर पूर्वजों की सद्गति हेतु यथा-शक्ति पर्वणश्राद्ध, गौरी-शिव पूजा, देवी-दर्शन, पूजा-पाठ, होमादि कृत्य, भोगादि चढ़ाना भोजन दान, षोडशदान, कुमारी पूजा, सौभाग्यवती पूजा, ब्राह्मण, कुमारी तथा सुहागिनों को भोजन कराने का विधान है। कामाख्या देवी के नित्य पूजन के अंगस्वरूप छागबलि की प्रथा है तथा विशेष अवसरों पर छाग, महिष, कपोतादि की बलि दी जाती है। कभी-कभी पूजा देने वाला इच्छानुकूल पशु-पक्षी का उत्सर्ग भी करते हैं। कामाख्या मंदिर के उत्तर में देवी क॰ क्रीड़ा पुष्करिणी है जिसे सौभाग्य कुंड भी कहते हैं। जनश्रुति है कि वह इन्द्र ने बनवाया है। इस कुंड की परिक्रमा से पृथ्वी परिक्रमा का पुण्य होता है।

सौभाग्य कुंड में स्नान करने का मंत्र है-

पृथिव्यौ यानि तीर्थानि, त्वयि तिष्ठन्ति सर्वदा।
तस्मात्पुनीहिमाम् कुंड, देव-दानव पूजितः।।
सर्वतीर्थमयस्त्वं हि सर्व क्षेत्रमयी ह्यासि।
दश पूर्वान दश परान, वंशानुद्धारपापतः।।

हाथ जोड़कर संकल्प करने के पश्चात्

अध्यदान इस मंत्र से करना चाहिये-

नमः सौभाग्य कुंडाय सर्वपाप हराय च।
सर्वक्षेत्र मयेशाय गृहाणार्ध्यं मोचयै नमः।।

स्नान मंत्र-

सौभाग्ये सलिलावर्त्ते, विमले मानवप्रिये।
नमो गां गों वषत् स्वाहा पापंहर नमऽस्तुते।।

कुंड तट पर अवस्थित गणेश जी को प्रणाम कर अनुज्ञा प्राप्त करना चाहिये-

प्रणाम मंत्र :-

देवेन्द्र मौलि मंदार मकरंद कणारुणाः।
विघ्नं हरन्तु हेरम्ब चरणाम्बुजरेणवः।।

स्पर्शन मंत्र :-

पापोऽहम् पापकर्माऽहम पापात्मा पापसंभवाः।
त्राहि मां पुण्डरीकाक्ष सर्व पाप हरो भव।।

अनुज्ञा मंत्र :-

नमस्ते गणपते देव महाभैरव रूपिणे।
अनुज्ञां देहि में नाथ कामाख्या दर्शनं प्रति।।

कामाख्या दर्शन क्रम :-

मंदिर में प्रवेश करते ही सामने १२ प्रस्तर स्तंभों के मध्य में देवी की चलन्त अष्टधातु की मूर्ति है। इसे हर गौरी या योग मूर्ति भी कहते हैं।

यहां प्रणाम करें :

कामाख्ये काम सम्पन्ने कामेश्वरी हर प्रिये।
कामनां देहि मे नित्ये कामेश्वरी नमोऽस्तुते।।
अनुज्ञा प्राप्त करें : कामदे कामरूपे सुमगे सुरसेविते।
करो निदर्शनं देव्याः सर्वकामार्थ सिद्धये।।

यह प्रस्तर निर्मित पंचरस्तर विशिष्ट सिंहासनासीन मूर्ति इस प्रकार की है - उत्तर में वृषभ वाहन, पंचवक्त्र एवं दशभुज विशिष्ट कामेश्वर महादेव हैं। दक्षिण में वजानना द्वादश बाहु, विशिष्ट अष्टादश लोचना, सिंह-वाहिनी कमलासना देवी मूर्ति कामेश्वरी की है। जो साधक सवाहना भगवती की इस मूर्ति का ध्यान एवं पूजन करते हैं उनके द्वारा त्रिदेव भी पूजित होते हैं। तीर्थ यात्री फिर कामेश्वरी देवी एवं कामेश्वर भैरव का दर्शन करते हैं। फिर मुहामद्रा का दस सीढ़ी नीचे अंध्कार पूर्ण गुफा में दर्शन करते हैं जहां सदा दीपक प्रज्वलित रहता है।

कामाख्या देवी का प्रणाम मंत्र :-

कामाख्ये वरदे देवि नील पर्वत वासिनी।

त्वं देवी जगतां मातर्योनिमुद्रे नमऽस्तुते ।।

स्पर्श मंत्र :-

मनोभव गुहामध्ये रक्त पाषाण रूपिणी ।
यस्याः स्पर्श मात्रेण पुनर्जन्म न विद्यते ।।

चरणामृत पान मंत्र :-

शुकादीनांच यत् ज्ञानं यमादि परिशोधितम् ।
तदेव द्रव रूपेण कामाख्या योनिमंडले ।।

जो भक्ति भाव से देवी के योनिमंडल का दर्शन, स्पर्श तथा मुद्रा का जलपान करते हैं वे सभी ऋणों से मुक्त होकर मोक्ष लाभ करते हैं। यह योनि मंडल एक हाथ लंबा तथा बारह अंगुल चौड़ा है और सतासी (८७) धनु परिमित क्षेत्र में रूक्ष रक्त है तथा सपुलक अष्टहस्त एवं ५० हजार धुलकान्वित शिवलिंग युक्त है। योगिनीतंत्र का द्वितीय भाग षष्ठ पटल देखें। मातृयोनि होने के फलस्वरूप इसका अर्ध भाग स्वर्ण टोप से आवृत रहता है जिसे वस्त्र पुष्पादि से अलंकृत किया जाता है। फिर लक्ष्मी, सरस्वती सहित दश महाविद्याओं का दर्शन करकम्बलेश्वर का दर्शन करते हैं, जो विष्णु का विग्रह है।

प्रति वर्ष पौष महीने में पुण्याभिषेक महोत्सव अर्थात् हर गौरी विवाह का आयोजन कृष्णपक्ष की द्वितीया या तृतीया तिथि को पुष्य नक्षत्र में मानाया जाता है। अम्बुवाची पर्व यहां विशिष्ट है। मान्यता है कि देवी के रजस्वला होने के उपलक्ष्य में इसे मनाया जाता है जो प्रायः आषाढ़ महीने में मृगशिरा नक्षत्र के तृतीय चरण बीत जाने पर चतुर्थ चरण में आर्द्रा नक्षत्र में प्रथम पाद के मध्य में मनाया जाता है। इस अवसर पर तीन दिनों तक मंदिर का पट बंद रहता है जो चौथे दिन खुलता है। अभिषेक पूजादि क पश्चात् यात्रियों को दर्शन करने दिया जाता है। अम्बुवाची पर्व तंत्रोक्त है तथा ब्राह्मण, संयासी, ब्रह्मचारी, विधवा आदि इन दिनों अग्नि का स्पर्श तक नहीं करते हैं। कोई भी पक्वान्न ग्रहण नहीं करते। नमक, शक्कर, दूध, दही, मिठाई आदि का सेवन भी नहीं करते हैं। इसका विशेष प्रचलन बंगाल तथा आसाम में है। उक्त अवसर पर भारत के सुदूर स्थान से तीर्थ यात्री आते हैं तथा उत्सव में भाग लेते हैं। अम्बुवाचीय योग में जगन्माता कामाख्या के रक्त वस्त्र के महत्व से सभी परिचित हैं। इस वस्त्र को धारण करने से कामना पूर्ण होती है तथा अभीष्ट फल प्राप्त होता है।

कामाख्या वस्त्र मादाय जपपूजां समाचरेत् ।
पूर्णकामं लभेद्देवी सत्यं सत्यं न संशयः ।।

(कुब्जिकातंत्रः सप्तम् पटल)

कामाख्या में जितने भी उत्सव मनाये जाते हैं उनमें देवध्वनि का विशेष महत्व है। ढोलक, नगाड़ा, झांझ आदि नाना प्रकार के वाद्य यंत्रों से उच्च ध्वनि की जाती है। यह उत्सव अति प्राचीन काल से चला आ रहा है। इसके उपलक्ष्य में पंचाग्नि मंदिर में 'मारेई पूजा' अर्थात् मनसादेवी का घट एवं नागफण स्थापित कर भाद्रपद की प्रथमा या द्वितीया को पूजा होती है। गायन-वादन के साथ कुछ लोग नृत्य भी करते हैं जिन्हें देनुधा भी कहते हैं। वे लोग देवी के विशेष कृपापात्र होते हैं जो देवी की कृपा प्राप्तकर आविष्ट रहते हैं तथा भैरव वेश धारण कर अजीबो-गरीब रोमांचक नृत्य दो दिनों तक भावावेश में रहकर करते हैं, मगर इनके साथ कोई दुर्घटना नहीं होती। रात-दिन समान गति से नृत्य चलता रहता है। अन्त में रात्रि में घट का विसर्जन सौभाग्य कुंड में कर दिया जाता है।

देवी मंदिर में नवरात्रि का दुर्गोत्सव, वसंत काल में कामेश्वर तथा कामेश्वरी देवी की हिंडोला यात्रा निकलती है, मेला लगता है तथा वासन्ती दुर्गा की पूजा होती है। ग्रहणादि तथा अन्यान्य पर्वो पर भी लाखों यात्री भगवती के दर्शननार्थ आते रहते हैं। योगिनी मंत्र-तंत्र, कवचादि का अध्ययन करना चाहिये।

कामाख्या देवी के मंदिर के निकट भुवनेश्वरी मंदिर है जो नीलांचल पर्वत के सर्वोच्च शिखर पर है। संध्या-रात्रि में यहां बैठकर निर्निमेष नेत्रों से आद्याशक्ति के लीला चांचल्याजन्य सृष्टि का अलौकिक सौंदर्य पान कर समाधि-सी स्थिति हो जाती है। चारों दिशाओं में दृष्टिपात करने से "ब्रह्मपुत्र नंद" के पर्वत पाद मूल स्पर्शित प्रवाह भंगिमा, दूर-दूरान्तर में स्थित सुशोभित गिरिश्रेणियों सुजला-सुफला, शस्य-श्यामला दिगन्तव्यापी धरणी मंडल का मनमोहक दृश्य; ब्रह्मपुत्र के मध्य उमानंद भैरव का चित्ताकर्षक दृश्य; दूसरे तट पर अवस्थित अश्वक्रांत मंदिर की सुषमा तथा प्रभास्नात गौहाटी का मनोहर दृश्य देखकर यही अनुभव होता है कि प्रकृति की इस नाट्य महाप्रदर्शन में लीन कठोर पाषाणवत् नास्तिक हृदय में भी भगवती की सत्ता का भाव प्रस्फुहित हो जाता है। बस इसी कसक के साथ कामाख्या छोड़ना पड़ता है कि हे माँ तुम फिर कब बुलाओगी।

काल-सर्प योग : कितना अशुभ, और फिर भी करें क्या ?

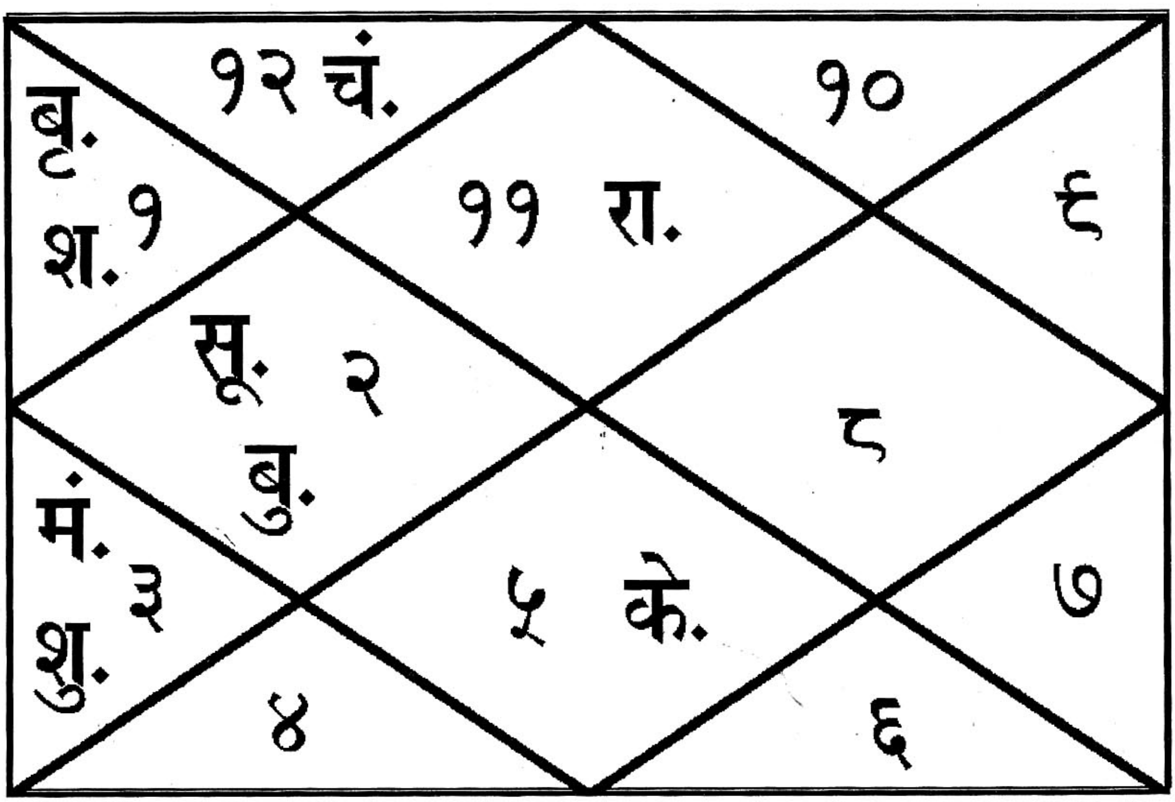

यदि किसी कुण्डली में काल-सर्प योग हो तो ज्योतिषी के चेहरे पर भी चिंता की रेखाएं उभर आती हैं, ज्योतिष ग्रंथों में इसके इतने अशुभ प्रभाव का वर्णन है कि जातक के जीवन में न थमने वाली परेशानियों का दौर कुछ ऐसी विडम्बना सृजित करता है जैसे इस धरा पर उसका जन्म ही महीभार के रूप में हुआ हो, यद्यपि अति प्राचीन ज्योतिष ग्रंथों में इस योग (काल-सर्प योग) का परिचय नहीं मिलता है तथापि अर्वाचीन ज्योतिष योग में ऐसा कोई ज्योर्तिविद्‌नहीं जो कुण्डली बनाते समय यदि यह योग है तो उसका क्यों न इसी योग से अभिहित करते हैं, प्राचीन ग्रंथावलियों में इस प्रकार के योग को काल योग; महाकालयोग, विषयोग तथा वैदूषणयोगादि के नाम से व्याख्या की गई जो कमोबेश काल-सर्प योग का फल-सादृश रखते हैं तथा इनके अशुभ प्रभावों का वर्णन भी इस योग के समानान्तर हैं। फिर भी काल-सर्प योग का वर्णन तथा अनुभव में आये तथ्यों के आधार पर इतना अशुभ फलदायी है कि जातक के प्रति सिवा करूणाभाव के कुछ और दूसरा भाव आता हो, चाहे जातक की जन्म पत्रिका में कितने ही शुभ ग्रहों का उत्तमोत्तम स्थिति क्यों न हो, यदि काल-सर्प योग से दूषित हो गया तो सारी शुभता धरी की धरी रह जाती है, शुभ प्रभाव वाले ग्रहों का प्रभाव समाप्त हो जाता है और अशुभ ग्रह अपनी विकराल तथा अशुभ प्रभाव का मानों सागर ही उड़ेंल देते हैं। जिस कुण्डली में राहू और केतू के बीच सभी ग्रह अवस्थित हो जायें तो वह जन्मपत्री का काल-सर्प योग से दूषित समझी जाती है। वैसा जातक राजाधिराज के यहां जन्म लेकर भी सड़क पर भीख मांगने पर विवश होगा अथवा अपनी सम्पूर्ण गुणवत्ता खोकर अति सामान्य जीवन जीयेगा। ऐसा प्रायः सभी ज्योतिषी मानते हैं तथा इसके निदान की कोई विधि न बताकर उसके दुर्भाग्य के प्रति निंश्चिंत होकर बैठ जाते हैं। मगर इतनी अशुभता नहीं है इस योग की कि इसका कोई निदान ही सम्भव न हो, इस का निदान है

और अचूक निदान है कि काल-सर्प योग से दूषित व्यक्ति यदि चाहे तो इसकी अशुभता को दूर कर सकता है अथवा न्यूनातिन्यून कर सकता है। इसकी भयंकरता को कम किया जा सकता है ऐसी विधियों की हम चर्चा बाद में करेंगे।

काल-सर्प योग की कुंडली में केमद्रुम या शकट योग बनने से जातक सामान्य जीवन तो आनन्दपूर्वक जीता है; किन्तु उसके धनी तथा विख्यात बनने की कामना कभी पूरी नहीं हो पाती। उनका स्वोपार्जित धन जिन्हें वे स्वयं की मेधा या अन्यपूंजी से संग्रहीत करते हैं उनके जीवन तक ही रह पाता है बाद में नष्ट हो जाता है। उनकी महत्वाकांक्षा उनकी बरबादी का कारण बन सकती है। चन्द्रमा से यदि गुरू केन्द्रस्थ हो और बुध से केन्द्रस्थ शनि हो तो जातक कामुक, वेश्यागामी तथा विलासी प्रवृत्ति का होते हुए भी थोड़ी मेहनत से अच्छा धन कमाने वाले तथा अपनी महत्वाकांक्षा भी पूरी कर लेने वाले होते हैं। ऐसे जातक, धार्मिक भी होते हैं तथा यज्ञादि में बढ़-चढ़कर भाग लेते हैं। वे अपनी उपलब्धियों से असंतुष्ठ, परिवार से दुखी तथा नीच संगति में रहते हैं। ऐसे लोग दैवयोग से अच्छे एवं ख्यातमान तांत्रिक और आभिचारिक कर्मों में निपुण होते हैं। इनकी आंखों में भी सम्मोहन शक्ति रहती है। यदि काल-सर्प योग युक्त लग्न पत्री में शनि-सूर्य, शनि-मंगल अथवा राहू या केतू के साथ अन्यान्य ग्रह हों या योग हो जाय तो धनी-मानी परिवार में जन्म लेकर भी इन्हें आजीवन संघर्षशील रहना पड़ता है। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में कम या ज्यादा परेशानियां बनी रहती हैं चाहे वह शिक्षा का क्षेत्र हो रोजी-रोटी का विषय हो, संतान पक्ष हो या दामपत्य सुख की बात हो वे सर्वदा अपनी उपलब्धियों से असंतुष्ट ही रहते हैं तथा मन में एक पीड़ा लेकर ही जीते रहते हैं। ये सर्वदा ऋण ग्रस्त रहते हैं तथा मित्रों-संबंधियों तथा परिवार के सदस्यों से ठगे जाते हैं। इनसे अपना स्वार्थ साधकर लोग इनका साथ छोड़ देते हैं। इन्हें किसी को ऋण या धन नहीं देना चाहिये अन्यथा उसकी वापसी आकाश कुसुम बनकर रह जाती है और पारस्परिक संबंध भी कटु हो जाता है। फिर भी ये सम्मानित तथा मनस्वी की तरह अपना जीवन व्यतीत करते हैं। परिवार के प्रायः सभी लोग इन्हें धोखा ही देते हैं तथापि उन्हें अपने परिवार से अटूट प्रेम बना रहता है। संघर्ष एवं अभाव का जीवन् जीकर भी ये अपने परिवार, देश और मित्रों के लिये अपने को उत्सर्ग कर देते हैं। कभी संघर्ष झेलते-झेलते ये टूट भी जाते हैं तथा सनकीपन सवार हो जाता है। बागी तेवर भी अपना लेते हैं। आत्महत्या भी परिस्थितियों से ऊबकर कर लेते हैं तथापि ये जीवट के धनी और कठिन-से-कठिन परिस्थितियों में भी अपना आत्म संतुलन तथा आत्म सम्मान की भावना नहीं छोड़ते हैं।

ज्योतिर्विदों ने काल-सर्प योग के बारह प्रकार बताये हैं जिन्हें क्रमशः **अनन्त काल-सर्प योग, कुलिक काल-सर्प योग, वासुकि काल-सर्प योग, शंखपाल काल-सर्प योग, शंखनाद काल-सर्प योग, पद्म काल-सर्प योग, तक्षक काल-सर्प योग, कर्केतिक काल-सर्प योग, शंखनाद काल-सर्प योग, पातक काल-सर्प योग, विषाद काल-सर्प योग** तथा **शेषनाग काल-सर्प योग** में वर्गीकृत किया गया है।

इतना तो निश्चित है कि योगातिवियोग में ज्योतिर्विदों ने इसे स्वतंत्र योग के रूप में अपनी स्वीकृति दे दी है जैसे कि अन्यान्य ग्रह योग, केमद्रुम योग या शकट योग आदि कुयोगों को स्वीकार किया गया है। काल-सर्प योग का फलाफल प्रभाव जीवन के उत्तरार्द्ध में निकलता है जब द्वादश भाव से सप्तम भाव के बीच सूर्यादि सातों ग्रह स्थित हों अर्थात्द्वादश भाव में राहू हो तथा सप्तम भाव में केतू और इन्हीं दोनों भावों के बीच सभी अन्य ग्रह स्थित हो जायें तथा षष्ठ भाव में केतू और इन्हीं दोनों भावों के बीच सभी अन्य ग्रह स्थित हो जायें तथा सप्तम् से एकादश भाव में कोई ग्रह स्थित न हो तो पूवार्द्ध काल-सर्प योग का फल जीवन के पूर्वाद्ध में ही मिलना प्रारंभ हो जाता है। यदि षष्ठ भाव से एकादश राहू और केतू के प्रभाव क्षेत्र मे आ जाये अर्थात् षष्ठ भाव में राहू अवस्थित हो तथा एकादश भाव में केतू अवस्थित हो अन्यान्य सूर्यादि सातों ग्रह इनके बीच में पड़ें तो यह उत्तरार्द्ध में झेलना पड़ता है।

मेष और वृश्चिक लग्न की कुण्डली में यदि काल-सर्प योग है तो वैसा जातक अपने जीवन में पूर्णतया असफल रहता है। उसके जीविकोपार्जन का कोई निश्चित आधार नहीं होता तथा उसे नौकरी में अत्यन्त निम्नकोटि का कार्य करने से तथा व्यवसाय में दो जून की रोटी में ही व्यवधान होने के फलस्वरूप सर्वदा निराशा, बेचैनी तथा हताशा से भरा होता है। वह स्वयं भी ऐसा कर बैठता है जो उसकी असफलता, निराशा तथा कुंठा का कारण बन जाती है। यदा-कदा निराशा के घने बादलों में आशा की क्षणिक बिजली कौंधने से उसे जीने का संघर्ष मिलता रहता है। सफलता की ओर बढ़ते हुए अचानक उसे असफलता का वरण करना पड़ता है और सब किया-कराया चौपट हो

जाता है। ऐसा अदूरदर्शी जातक स्वयं इतनी कुंठायें पाले रहता है कि उसके मन में हमेशा भय बना रहता है कि वह सफल हो भी पायेगा या नहीं और परिस्थितियां कुछ ऐसी बन जाती हैं कि उसका सारा परिश्रम व्यर्थ हो जाता है। इस प्रकार की कितनी ही स्मरणीय घटनाओं से उसका जीवन भरा रहता है और वह भाग्य एवं परिस्थिति के भंवर को झेलते रहने को विवश होता है। हां, ऐसे जातक असीम धैर्यशाली तथा धर्मभीरू होते हैं, साथ ही उनमें चारित्रिक दोष भी होता है जिसके फलस्वरूप राजघराने में जन्म लेकर भी दरिद्र बन जाते हैं। मिथुन तथा कन्या लग्न की कुण्डली में यदि ऐसा योग हो तो नौकरी से अपनी अजीविका अर्जित करते हैं तथा वे अपनी नौकरी में साधारण स्तर के ही बने रहते हैं। उच्चपद पाने की उनकी लालसा अधूरी ही रह जाती है। व्यवसाय में भी उन्हें कोई खास आय नहीं हो पाती, बस अपना तथा अपने परिवार का किसी तरह गुजारा कर लेते हैं। दस बार की आय एक ही बार के नुकसान से समाप्त हो जाती है। कागज़, वस्त्र, अन्न, होटल के व्यवसाय में थोड़ी बहुत सफलता मिलती है, किन्तु वह भी उनके जीवन काल में समाप्त हो जाती है। कर्क लग्न की कुण्डली में यह लोग अजीविका के क्षण-क्षण बदलते रहने के कारण कहीं भी सफलता प्राप्त नहीं कर सकते। यदि वे डाक्टर, वकील, ज्योतिषी, ट्यूटर, कलाकार तथा स्वतंत्र लेखन का कार्य करें तो उन्हें धन और यश दोनों की प्रचुरता से मिलते हैं, किन्तु उनका स्वास्थ्य तथा उनका परिवार उनकी सफलता में बाधा उत्पन्न करता है तथा गिरगिट की तरह अपना रंग-ढ़ंग बदलने वाला ऐसा जातक हमेशा दुखी रहता है। इन्हें अपनी संपत्ति तथा यश की रक्षा हेतु नित्य दान पुण्य करते रहना चाहिये। सिंह लग्न में काल-सर्प योग रहने से जातक हठधर्मी, दृढ़प्रतिज्ञ तथा कठोर होता है। इसे अजीविका के लिये बारम्बार अपना व्यवसाय बदलना पड़ता है, फिर भी सफलता नहीं मिलती। यदा-कदा अच्छी संपत्ति जुटा लेते हैं तो घाटे की मार से सब कुछ स्वाहा हो जाता है और फिर पुरानी जगह पर लौट आते हैं। नौकरी की तरफ़ इनकी प्रवृत्ति नहीं होती और यदि हुई भी तो टिकना असंभव। पारिवारिक संगठन भी इनके व्यवहार से टूट जाता है जिससे इन्हें मानसिक पीड़ा होती है। धनु और मीन लग्न वाले जातक काल-सर्प योग के प्रभाव में नौकरी आदि में सफलता प्राप्त नहीं कर पाते। विपरीत लिंगी व्यक्ति के संपर्क से स्वतंत्र कार्य क्षेत्र में सफलता मिल सकती है, किन्तु उन्हीं के षडयंत्र से सारे किये कराये पर पानी फिर जाता है। राजनीति के क्षेत्र में परामर्शी के रूप में दलाली, कमीशन एजेंट या कन्सलटेंसी में पर्याप्त यश तथा प्रतिष्ठा पाते हैं। मकर और कुंभ लगन में काल-सर्प योग होने से खनिज, पेट्रोलियम, अम्ल, कोयला, मेडिकल स्टोर या कारखानों में नौकरी या स्वतंत्र व्यवसाय में अच्छी सफलता तथा ख्याति प्राप्त करते हैं; किन्तु यह टिकाऊ नहीं होता और शीघ्र ही सारी कमाई नष्ट हो जाती है। शेयर्स, जुए से इन्हें यदा-कदा अच्छा काम मिल भी जाये तो स्थिरता नहीं रहती। पुरानी तथा पैतृक संपत्ति के उपयोग या उपभोग से वंचित रहते हैं तथा स्वोपार्जित संपत्ति से न स्वयं संतुष्ट रहते हैं और न परिवार से प्रसन्न रह पाते हैं। परदेश या विदेश से अच्छे अवसर मिल सकते हैं तथा सफलता भी प्राप्त हो सकती है, किन्तु अपने परिवार से सदा ही अशान्त तथा असंतुष्ट बने रहते हैं।

काल-सर्प योग सर्वदा अशुभ ही नहीं होता इसके शुभत्व के भी कतिपय घटक होते हैं। ऐसी कुण्डली में यदि कोई कारक ग्रह उच्च का हो और दूसरा अकारक ग्रह भी उच्च का हो तो वैसा जातक अत्यन्त प्रभावशाली होता है तथा असंभव कार्य को थोड़े से यत्न से संभव बना लेता है। धुन के पक्के तथा रंगीन तबियत के ऐसे लोग बड़े ही प्रवीण तथा कार्य कुशल होते हैं। यदि किसी भाव में सूर्य, चन्द्र की युति हो तो उन्नति के लिए कठोर संघर्ष एवं परिश्रम से इन्हें पूरी सफलता मिलती है, जो अन्तोगत्वा किसी दुष्ट की संगति से अपयश तथा धननाश का योग उपस्थित हो जाता है, सूर्य के साथ शनि या बुध के साथ चंद्रमा होने से जातक काल-सर्प योग रहते हुए भी धन-वैभव से युक्त, सुव्यस्थित तथा धार्मिक कार्यों में बढ़-चढ़कर हाथ बंटाता है। काल-सर्प योग के शुभ पक्ष का विवेचन करने के पूर्व अब हम पूर्वोक्त द्वादश प्रकार के इस योग की एक-एक कर व्याख्या करेंगे।

१. अनन्त नाम काल-सर्प योग : इस योग में लग्न में राहू तथा सप्तम भाव में केतू की स्थिति होती है और शेष ग्रह उसके बीच में आ जाते हैं। अपने स्वजनों से जातक को हमेशा धोखा तथा छल-कपट का व्यवहार किये जाने का संशय होता है। प्रारंभ में संघर्ष तथा अभाव में पलता हुआ जीवन युवावस्था एवं प्रौढ़ावस्था पर परेशानी तथा कष्ट में व्यतीत होता है। किसी महिला के सहयोग से अचानक प्रगति करते हैं तथा किसी अन्य महिला के चलते पतन के

गर्त में जा गिरते हैं। ऐसे लोग भावनात्मक अधिक होते हैं तथा बुद्धि से काम नहीं लेते फलस्वरूप जीवन में निराशा, कुंठा एवं विफलता ही हाथ लगती है, जीवन में स्वतंत्रता नहीं के बराबर मिलती है और स्वतंत्रता से काम करना चाहते हैं। मुख तथा मस्तिष्क के संघातक रोग से अपनी जीवन लीला समाप्त करते हैं। यदा-कदा जीवन के उत्तरार्द्ध में संतुलन प्राप्त करते हैं।

२. *कुलिक का काल-सर्प योग :* द्वितीय भावस्थ राहू और अष्टमभावस्थ केतू के मध्य अन्य ग्रहों के स्थित होने से बनता है। इनके विकास मार्ग में स्वजन, इष्टमित्र तथा शुभचिन्तको के कारण सदा ही अवरोध उपस्थित किया जाता है। स्वास्थ्य की समस्या से ये कभी मुक्त नहीं हो पाते। धन का अभाव बना रहता है तथा इनकी प्रगति पर दुष्टजनों की कुदृष्टि बनी रहती है। ऐसे लोग जीवन के पक्के होते हैं कठिनाइयों को हंसकर झेल लेते हैं और दूसरों के कष्ट में सान्त्वना एवं हिम्मत बंधाते हैं। अपने मित्र एवं शत्रु में अंतर कर पाना इनके वश की बात नहीं। वैसे अपने ज्ञान तथा बुद्धि के बल पर इनकी प्रगति होती है तथा धन भी पर्याप्त संग्रह कर लेते हैं, किन्तु परिवार में आने पर क्लेश और दुख बढ़ जाता है। इनकी वाणी दूसरों के बारे में प्रायः सत्य हो जाती है। यदि ये अच्छे-बुरे की पहचान कर लें तो इनका जीवन सुखमय होता है, किन्तु इनके लिये ऐसा संभव है ही नहीं।

३. *वासुकि काल-सर्प योग :* इसमें तृतीय भाव का राहू और नवमस्थ केतू के बीच सभी ग्रह आ जाते हैं। ऐसे व्यक्ति कठोर परिश्रमी, अनुशासनप्रिय, दूसरे के दुःख से द्रवित होकर सहयोग करने के इच्छुक होते हैं। अपना दुःख दूसरों से कहने में संकोचशील तथा सत्यप्रिय होते हैं। इनका पारिवारिक जीवन उलझा हुआ तथा अभिशप्त होता है। परिवार से किसी प्रकार का सहयोग नहीं मिलता है, किन्तु बाहरी संबंधों के कारण बड़े-से-बड़ा कार्य कर देते हैं। सम्मान और धन मिलने के बावजूद भी उनकी उपलब्धि पर दुष्टों की कुदृष्टि लगी रहती है। वे भाग्यशाली नहीं होते हैं तथा भाइयों एवं परिजनों से हमेशा ठगे जाते हैं। निम्न स्तर के लोगों से सहयोग एवं मैत्री तो निभती है, किन्तु उच्चस्तरीय व्यक्तियों से शत्रुता तथा मनमुटाव की आशंका बनी रहती है। आकस्मिक एवं अप्रिय घटनाओं से इन्हें व्यथित होना पड़ता है और इनके स्वभाव में सनकीपन आ जाता है।

४. *शंखपाल काल-सर्प योग :* चतुर्थराहू और दशमस्थ केतू के मध्य अन्यान्य ग्रहों की स्थिति से शंखपाल काल-सर्प योग बनता है और ऐसे संयोग वाला जातक माता-पिता को दुःख देने वाला होता है। इनके मित्र स्वार्थी एवं कपटाचारी होते हैं। परिजनों से प्राणभय उपस्थित हो सकता है। इनकी कामुकता इतनी अधिक होती है कि समाज में उपहास के पात्र बनकर हेय दृष्टि से देखे जाते हैं। परोपकार करने पर भी इन्हें यश नहीं मिलता। पैतृक संपत्ति से वंचित ऐसे जातक की स्वोपार्जित संपत्ति भी पुत्र-पौत्रों के कारण नष्ट हो जाती है। पारिवारिक मर्यादा को बनाये रखने में इन्हें बड़ी-बड़ी कठिनाइयों से जूझना पड़ता है। लोकापवाद तथा मुकदमें में इनकी आय का बहुत बड़ा हिस्सा खर्च हो जाता है।

५. *पद्म काल-सर्प योग :* पंचमस्थ राहू और एकादश भाव में बैठे केतू के मध्य जब अन्य ग्रहों की स्थिति होती है तो पद्म नामक काल-सर्प योग होता है। इस योग में जन्मने वाला जातक बुद्धिमान, परिश्रमी, सम्मानित एवं स्नेहशील होने पर भी अर्थोपार्जन में भारी विपत्तियों का सामना करते हैं। अपने संबंध में इनका निर्णय सर्वदा ही हानिकारक होता है। प्रथम संतान पुत्र हो तो कष्ट देता है। कामुक प्रकृति के ऐसे जातक अपने जीवन में अपव्ययी, अपयशी और कष्टकर जीवन जीते हैं तथा कभी-न-कभी किसी प्रतिष्ठित व्यक्ति के द्वारा बरबाद कर दिये जाते हैं तथा कंगाली की स्थिति में आ जाते हैं

६. *महापद्म काल-सर्प योग :* इस योग में जब छठे भाव में राहू तथा बारहवें भाव में केतू के बीच अन्य सभी ग्रह आ जाते हैं तो जातक अनावश्यक रूप से मानसिक तनाव झेलते हैं। इनसे अपमानित तथा प्रतिशोध लेने के लिए लोग पग-पग पर तैयार मिलते हैं, किन्तु इनका असीम धैर्य एवं मानसिक संतुलन देखते ही बनता है और अन्ततोत्गत्वा से परिस्थितियों पर विजय प्राप्त कर लेते हैं। इन्हें खान-पान का अभाव नहीं रहता, किन्तु महत्वाकांक्षा बढ़ी-चढ़ी रहती है। जीवन में कभी ऐसे लोग अत्यंत परिश्रमी तथा कर्मठ होते हैं। राजनीति के क्षेत्र में इनका सितारा बुलंद हो सकता है तथा पद-प्रतिष्ठा, यश की प्राप्ति कठिन संघर्ष के फलस्वरूप ही प्राप्त होती है।

७. *तक्षक काल-सर्प योग :* तक्षक काल-सर्प योग में जन्म लेने वाला जातक जब सप्तम राहू तथा लग्नस्थ केतू के मध्य सारे ग्रह आ जायें तो धनोपार्जन परिश्रम से; किन्तु

स्वाभिमान पूर्वक होता है। यद्यपि ये प्रख्यात ज्योतिषी, राजनीतिज्ञ, लेखक एवं चित्रकार बन सकते हैं, किन्तु पूर्णता नहीं मिल पाती है। त्याग की भावना बढ़-चढ़कर होती है। अपने लोग ही इनके साथ विद्रोह भी करते हैं। विद्योपार्जन, राजनीति, व्यापार में तथा सरकारी सेवा में भी शिखर पर पहुंच जाते हैं किन्तु दैवयोग से एक ही झटके में सब-कुछ धराशायी हो जाता है। विदेशयात्रा भी करते हैं।

८. ***कर्कोट काल-सर्प योग :*** कर्कोट नामक काल-सर्प योग में जब अष्टमस्थ राहू और द्वितीयस्थ केतू के बीच अन्यान्य ग्रह बैठे हों तो जातक की आर्थिक स्थिति दयनीय होती है तथा इनका जीवन रहस्य-रोमांच से आप्लावित रहता है। अपने वचन और धुन के पक्के ऐसे लोगों के जीवन में शुभाशुभ आकस्मिक रूप से घटता है। रोग के कारण भयंकर शल्य चिकित्सा से गुजरते हैं। नशीले पदार्थ की लत पड़ जाने से नशा इनके प्राणान्त का हेतु बन जाता है। इनकी पाचन क्रिया ठीक नहीं रहती।

९. ***शंखनाद काल-सर्प योग :*** शंखनाद काल-सर्प योग में जब भाग्यस्थ राहू और तृतीयस्थ केतू के बीच अन्यान्य ग्रह हों तो उस योग में जन्मे बालक का पारिवारिक जीवन अत्यन्त दुःखी होता है। इन्हें स्त्री तथा संतान कष्ट से पीड़ा होती है। इनके गुप्त शत्रुओं का बाहुल्य होता है। इनका व्यक्तित्व बड़ा ही प्रभावशाली तथा मनमोहक होता है तथा पराये को भी मित्र बना लेने में इन्हें महारत हासिल होती है, किन्तु अपने लोग इनके साथ अचानक विश्वासघात करते रहते हैं जिसके कारण इन्हें हमेशा मानसिक तनाव झेलना पड़ता है।

१०. ***पातक काल-सर्प योग :*** इसमें जन्म लेने वाला जातक वैवाहिक जीवन में अपने कुटुम्बियों के हस्तक्षेप के कारण दुःखी रहता है तथा हमेशा अशान्त बना रहता है। कर्मक्षेत्र ठीक रहा तो घरेलू जीवन संतापकारक होता है। इन्हें हृदयरोग, मधुमेह, श्वास संबंधी रोग तथा यक्ष्मा होने की प्रायः संभावना बनी रहती है। आजीविका संबंधी परेशानियां बनी रहती हैं। इन्हें अपने जीवन में आर्थिक अभाव, चिन्ता एवं मानसिक तनाव में ही रहना होता है। दशमस्थ राहू और चतुर्थ भावस्थ केतु के मध्य सूर्यादि अन्य ग्रहों की स्थिति में यह योग बनता है।

११. ***विषाक्त काल-सर्प योग :*** विषाक्त काल-सर्प योग में जन्म होने से अपनी आजीविका का जीवन निर्माण के लिए कठोर संघर्ष करता है। भावुकता और उदारता के कारण इन्हें आर्थिक क्षति होती है तथा विद्या और धन की आकांक्षा पूरी नहीं हो पाती। पुत्र संबंधी सुख भी यथेष्ट नहीं होता। इनका स्वभाव सरल, व्यवसायिक और मिलनसार होता है तथा दूसरे के प्रति सहयोग तथा परोपकार की भावना बढ़-चढ़कर होती है। दिन रात चिन्तन रहने के कारण इन्हें रक्तचाप, मधुमेह, संधिवात् तथा कर्कट रोग की संभावना होती है। परिजनों के व्यवहार से इनमें क्षोभ एवं आक्रोश की भावना भी प्रबल रहती है।

१२. ***शेषनाग काल-सर्प योग :*** यह तब होता है जब द्वादश भाव के राहू और षष्ठभाव के केतु के मध्य सूर्यादि सप्तग्रह अवस्थित होते हैं। इनका व्यक्तित्व संतुलित होता है तथा देश-विदेश सर्वत्र रहन-सहन, खान-पान में नियमितता रखते हैं। इनके शत्रु इन्हें आभिचारिक क्रियाओं से हानि पहुँचाते हैं। साझे के काम से इन्हें हानि ही होती है, देश-विदेश के संपर्क से ख्याति तथा धनागम प्रचुर होता है। इनके जीवन में जो भी शुभ घटना होगी वह आकस्मिक होगी और इनके सोच-समझकर लिए गए निर्णय से बना-बनाया कार्य बिगड़ जायेगा। ये थोड़े सनकी तथा झक्की भी होते हैं तथा आवेश आने पर आक्रामक हो उठते हैं। इनकी सफलता शिक्षक, वकील, पत्रकार, प्रवचनकार्य तथा ज्योतिषी के रूप में निश्चित होती है; अन्यथा नौकरी में इन्हें कोई विशेष सफलता नहीं मिलती।

कापसर्प योग के निदान हेतु प्रतिवर्ष रुद्राभिषेक करायें, बटुक भैरव का अनुष्ठान करायें तथा यंत्र धारण करें, महामृत्युंजय जप का अनुष्ठान करायें। सर्वोपरि हनुमान जी का प्रतिवर्ष वृहद अनुष्ठान तो करायें ही इसे अपनी पूजा का अंश बना लें और द्वादशाक्षर मंत्र का प्रतिदिन ११ माला जप करें तथा हनुमान चालीसा, संकटमोचन हनुमानाष्टक एवं बजरंग बाण का पाठ करें। कार्तवीर्य मंत्र का अनुष्ठान वर्ष में एक बार अवश्य करावें। जोड़ा नाग मूर्ति शिवलिंग पर चढ़ावें। इन विविध विधानों में आपके लिए क्या उपयुक्त रहेगा यह कुंडली देखकर निश्चित किया जा सकता है।

तनाव : महाव्याधि

इस यांत्रिक युग में मनुष्य का जीवन इतना जटिल तथा बहुआयामी हो गया है कि उसे एक क्षण भी विश्राम नहीं। जीवन यापन की समस्या दिनोंदिन इतनी उलझती जा रही है कि उसका भविष्य अनिश्चित तथा भ्रान्तिपूर्ण हो गया है। कल की चिन्ता उसे खाये जा रही है। परिवार के भरण-पोषण तथा जीवन के आवश्यक उपादान की व्यवस्था में ही वह इतना परेशान है, इतनी आपाधापी तथा इतनी भागदौड़ है कि उसकी समस्याओं का अन्त नहीं।

प्रतिद्वन्द्विता के इस युग में स्पर्धा की भावना चरम पर है। परिवार की सुख-शान्ति उससे कोसों दूर होती जा रही है। संयुक्त परिवार के बिखराव के साथ वह समस्याओं से जिस प्रकार अपने को घिरा हुआ पाता है, सारे प्रयासों के बाद भी वह जीवन के चक्रव्यूह का भेदन करने में असमर्थ, नियति की मार झेलने में असमर्थ, विवशता की परिस्थितयों में जीना उसकी मजबूरी बन गई है कि क्षण मात्र विश्राम नहीं, वह अनिद्रा तथा तनाव का शिकार हो गया है। सुरक्षा का भय चैन से एक पल जीने नहीं देता। भय, आशंका, उद्विग्नता, ईर्ष्या, द्वेष आदि नकारात्मक भावनायें उसके मानसपटल को इतना विकृत कर देती हैं कि वह पागलपन के कगार पर पहुंच जाता है। जीविकोपार्जन की समस्या उसकी सामर्थ्य का इतना दोहन कर लेती हैं कि वह कालान्तर में किसी काम का नहीं रह जाता। भविष्य में असुरक्षा तथा अकेलेपन की कल्पना से भी वह कांप उठता है। व्यर्थ की चिन्ताओं से बोझिल जिन्दगी जिस परिणाम पर पहुंच जाती है उसे ही तनाव तथा अवसाद की मानसिक व्याधि के रूप में हम जानते हैं।

तनाव की इस गंभीर व्याधि का हमारे जीवन पर बड़ा ही व्यापक प्रभाव पड़ता है। स्कूली बच्चों से लेकर युवा, वृद्ध, श्रमिक, बुद्धिजीवीवर्ग, कुशल गृहणियां, कामकाजी महिलायें, व्यापारी वर्ग आदि समाज के जितने भी वर्ग है उनमें तनाव की महाव्याधि संक्रामक रोग की तरह फैलती जा रही है और यदि शीघ्र इसका निराकरण नहीं हुआ, इस समस्या का समाधान नहीं हुआ तो यह हमारी संस्कृति को निगल जायेगी तथा समाज में हताशा एवं असुरक्षा से उत्पन्न कई प्रकार के मनोरोग तथा शारिरिक व्याधियां नये-नये रूप में हमारे सामने खड़ी हो जायेंगी। अभी भी अधिकांश रोगों के मूल में तनाव ही कारण है। अमेरीकी मेडिकल एसोसिएशन की पत्रिका की रिपोर्ट के अनुसार डॉक्टर के पास आने वाले रोगियों में २८ प्रतिशत पुरूष तथा १८ प्रतिशत स्त्रियां तनाव की स्थिति में रहते हैं। तनाव से उत्पन्न रोगों में एनीमिया, थायरायड समस्या, कृमिजन्य, मधुमेह, किडनी के रोग, क्षय रोग आदि आते हैं। कैंसर का कारण भी तनाव से ही प्रांरभ होता है। सामाजिक व्याभिचार, बलात्कार, अपहरण तथा आत्महत्या जैसी मानस-व्याधियां भी तनाव का ही प्रतिफल हैं।

केवल मनुष्य ही एक प्राणी है जो तनाव ग्रस्त रहता है पशु-पक्षी जगत् में तनाव नामक किसी भी व्याधि की कोई आशंका नहीं। प्रकृति के साथ जीने वाले जीव-जन्तु तनाव के शिकारी नहीं होते। प्रातः होते ही पक्षी अपने घोंसलों में चहचहाने लगते हैं तथा अपने-अपने शावकों के लिये दाना चुगने निकल जाते हैं। उनका सहज ज्ञान कुछ इतना विकसित होता है कि वे तनावग्रस्त नहीं होते हैं। किसी समस्या के आते ही उस के समाधान की दिशा में निकल पड़ते हैं, उन्हें मानव की तरह अन्तर्मन में दबाने का प्रयास नहीं करते। वनस्पति जगत् तो वसंत ऋतु में अपनी जीवन्तता तथा उल्लास का परिचय अपने हरित पर्ण, पुष्प, फल से लदकर देते हैं। प्रकृति स्वयं भी ऊर्जा से भरी-पूरी है। समुद्र तट से टकराती लहरें, सागर की ओर गतिशील नदियां, सुगंध बिखेरते कानन-कुंजों में फूल जो हवा के संग झूमते-गाते हैं। सारी प्रकृति सतत् कार्यशील रहकर भी तनाव का शिकार नहीं होती, किन्तु मानव अपनी बुद्धि विलास के भविष्य के सपने संजोता रहता है, निठल्ला बनकर अपने भविष्य की चिन्ता करते-करते अपनी सुरक्षा की मरीचिकाओं से त्रस्त हो जाता है। सफलता मिलते-मिलते रह जाती है और वह तनाव में जीने लगता है। अपनी त्रुटियों का परिमार्जन आशा

विश्वास के साथ प्रयास करते रहने से उसे सफलता मिल सकती है। अपने नकारात्मक विचारों के कारण हार मानकर बैठ जाने वाले व्यक्ति कई प्रकार की मानसिक व्याधियों से ग्रस्त हो जाते हैं।

इस तनाव ग्रस्त जीवन का और भी कारण है, भोगवादी प्रवृत्ति के कारण मनुष्य प्रकृति से दूर होता जा रहा है। हमारा सारा आचरण आधुनिकता के नाम पर अनियमित जीवनचर्या, खान-पान की गलत आदतें, असंयमित आहार-व्यवहार, निषेधात्मक जीवन शैली के फलस्वरूप हम प्रकृति से दूर होते जा रहे हैं। ऊर्जा के नैसर्गिक स्त्रोत से हम कटते जा रहे हैं। भावनात्मक जटिलता के कारण हम तनाव से ग्रस्त होकर इतना थक जाते हैं कि जीवन में संघर्ष कर सफलता पाने के योग्य नहीं रह जाते। काम करते-करते थक जाना बिल्कुल स्वाभाविक है किन्तु कुछ न करते हुए भी हम अपने भाव-प्रवाह का ठीक उपयोग नहीं कर पाते तो थकान के एक ऐसे अज्ञात गह्वर में ढकेले जाते हैं कि वहां से निकल पाना असंभव-सा प्रतीत होने लगता है। विश्राम से भी हमारी चेतना स्वच्छ तथा स्वस्थ नहीं रह पाती है। रात्रि में अनिद्रा तथा दिन में चिड़चिड़ापन तथा अवसाद तनाव के लक्षण हैं जिनसे युक्त हुए बिना तनाव रहित होना भी कठिन कार्य है।

परमात्मा ने मनुष्य को जीवन-यापन करने के लिये सीमित ऊर्जा प्रदान की है। वह अपना कार्य कुशलतापूर्वक तथा व्यवस्थित ढंग से तभी कर सकता है, जब वह अपनी ऊर्जा का सार्थक उपयोग करे। शक्तिक्षेत्र के अनुपात में ही उसकी कार्य-कुशलता में निरंतर ह्रास होता रहता है, चूंकि तनाव ग्रस्त व्यक्ति अपनी ऊर्जा का अपव्यय करता रहता है जिससे कार्य करने में अरुचि हो जाने से उसका कार्य त्रुटिपूर्ण हो जाता है एवं वह समाज तथा परिवार में उपहास, प्रताड़ना एवं अन्यमनस्कता की स्थिति झेलने लगता है। इसके फलस्वरूप रह-रह कर उसका ध्यान उचटने लगता है। मन भारी हो जाता है तथा मस्तिष्क की नसें कठोर होने लगती हैं तथा वह अपने को हर कार्य के लिये आयोग्य मानकर हीन ग्रंथि का शिकार हो जाता है। सामान्य क्रम में तनाव का संबंध शरीर से उतना नहीं जितना मन से है। भावनात्मक और मनोवैज्ञानिक कारणों से तनाव वस्तुतः शरीर को बुरी तरह थका डालता है। स्थानीय थकान से ग्रस्त व्यक्तियों में ८० प्रतिशत् तनाव के कारण ही मानसिक व्याधियों से ग्रस्त हैं। तनाव ग्रस्त व्यक्ति समस्याओं से जूझता हुआ अपनी ऊर्जा को समाप्त कर डालता है। यदि लंबे समय तक तनाव की स्थिति बनी रहे तो ऊर्जा का अतिशय क्षय हो जाना स्वाभाविक है। अन्यथा उदासीनता जन्य तनाव में मस्तिषक में न्यूरो रसायनों का स्राव होने लगता है जिससे अन्तः सुरक्षा प्रणाली दुर्बल होती जाती है। पाचन तंत्र तथा-प्रतिरक्षा तंत्र के दुर्बल होने से आहार से मिलने वाली शक्ति नहीं मिल पाती है। इसके अलावा मस्तिष्क में न्यूरो रसायन इम्युनो मॉडुलेटर प्रतिरक्षा तंत्र को भी निष्क्रिय बना डालते हैं।

प्राकृतिक रूप से प्राप्त पौष्टिक तथा सुपाच्य आहार लेने, नियमित समय पर लेने तथा उचित मात्रा में लेने से पाचन तंत्र सुदृढ़ बनता है। सफेद चीनी की जगह प्राकृतिक शक्कर, डिब्बाबंद फास्ट फूड तथा काला-पीला पेय के स्थान पर हरी सब्जी, दूध, फल, अंकुरित अनाज का सेवन कर अपनी पाचन प्रणाली सशक्त बनानी चाहिये। मानसिक तनाव के कारण स्थायी तौर पर व्यक्ति, निषेधात्मक विचारों में खोने लगता है तथा सार्थक कार्यों में लगे रहने की बजाय निठल्ला और खाली बैठा रहता है। ऐसे व्यक्ति के लिये जीवन भार हो जाता है और अपनी कुंठा आदि के कारण वह स्थायी रूप से थकान तथा तनाव का रोगी बन जाता है। नींद की कमी पूरी करने के लिये नींद की गोलियों का सेवन वर्तमान युग में फैशन बनता जा रहा है, जिसका परिणाम अत्यन्त घातक तथा जान लेवा हो सकता है। नींद की गोलियों से तत्काल राहत भले ही मिल जाये मगर इसका आदी हो जाने से अनिद्रा फिर अपने चपेट में ले लेती है। ऐसे लोग चाहें तो अपने दृढ़ इच्छा शक्ति एवं आहार-व्यवहार में परिवर्तन कर अनिद्रा पर विजय पा सकते हैं तथा अपनी तनाव की स्थिति पर काफी हद तक नियंत्रण भी कर सकते हैं।

तनाव मुक्त होने के लिये जीवन में कोई लक्ष्य रख लेना चाहिये तथा योजना बद्ध चरणों में उसे प्राप्त करने का दृढ़ संकल्प ले लेना चाहिये। अपनी रुचियों को ध्यान में रख कर एक या दो क्षेत्रों को अपनी सक्रियता के लिये

चुन लेना चाहिये। अपने उद्देश्य के प्रति निष्ठावान् बनकर हम अपना समय सार्थक बिताकर तनाव से मुक्ति पा सकते हैं। उद्देश्य निष्ठ व्यक्ति तनाव का शिकार नहीं होता और लम्बे समय तक बिना थके काम कर सकता है। अपनी सम्पूर्ण जीवन शैली की समीक्षा करनी चाहिये तथा तनाव के कारक तत्वों का विश्लेषण कर उनके स्थान पर सक्रियता को बढ़ावा देना चाहिये। तनाव के कारक तत्वों को भली-भांति समझकर उन्हें दूर करना चाहिये। अल्पकालिक विश्राम भी बीच-बीच में होना चाहिये जिससे हमारी ऊर्जा तथा स्फूर्ति बनी रहे। अल्पकालिक विश्राम के साथ-साथ ५-६ घंटे की प्रगाढ़ निद्रा भी अत्यावश्यक है। अत्यधिक श्रम तथा मानसिक तनाव में अवशोषित ऊर्जा की भरपायी सुखद एवं गहरी निद्रा से ही संभव है।

कार्य को सुयोजित तथा सुव्यवस्थित तरीके से संपादित करने से अनावश्यक तनाव तथा थकान से निजात पाई जा सकती है। रुचिकर कार्य करने से भी व्यक्ति कम थकता है तथा देर तक बिना ऊबे हुए कार्य कर सकता है। कार्य करने की अवधि को छोटे-छोटे कालखंडों में बांटकर कार्य करने से उसका संपादन यथा समय उत्तम रीति से हो जाता है। कार्य के बीच-बीच में थोड़ा विश्राम तथा मनोरंजन व्यक्ति को तरोताजा रखता है तथा उसकी ऊर्जा जस की तस बनी रहती है।

कार्य में थोड़ी वैविध्यता का समावेश भी आवश्यक है। एकरसता से मन ऊबने लगता है तथा शरीर पर थकान हावी होने लगता है ऐसे में कार्य अधूरा तो रह ही जाता है और पूर्ण न होने पर पूर्व का श्रम भी व्यर्थ चला जाता है। थकान और तनाव से बचने के लिए बीच-बीच में कार्य शैली बदल लेनी चाहिये। गांधी के जीवन चरित को देखें तो ज्ञात होता है कि वे मानसिक और शारीरिक कार्य को अदल-बदल कर करते थे। इससे शीघ्र कार्य भी हो जाता है। दीर्घ सूत्री व्यक्ति योजना बनाते-बनाते अपना कार्य भी प्रारंभ नहीं कर पाते तथा कार्य प्रारंभ करके उसे पूरा नहीं कर पाते। अपनी योजना पर विचार ही करते रह जाते हैं। आज का काम कल पर टालने जैसे शत्रु मनुष्य के लिये कुछ भी नहीं हैं। इससे पूरा जीवन व्यर्थ एवं रिक्त लगने लगता है। अतएव योजना को छोटे-छोटे काल खंड में बांटकर करने से कार्य करने की ऊर्जा बनी रहती है। बीच-बीच में अपनी सफलता या सुखद घटनाओं के स्मरण से भी अपने को तरोताजा रखा जा रखा जा सकता है तथा तनाव से दूर रहा जा सकता है। तनाव या थकान का कोई स्वतंत्र आधार नहीं है वह मात्र ऊर्जा की कमी या अभाव का पर्यायवाची है। व्यक्ति का ऊर्जा स्तर कई बातों पर निर्भर रहता है जैसे आहार व पाचन प्रणाली वातावरण, ताप, विचार तथा भाव। दैनिक जीवन की ऊर्जा भी चूंकि ब्रह्मांडीय ऊर्जा से ही आती है, अतएव उसके विघटन या कमी का कोई प्रश्न ही नहीं है। चतुर्दिक संव्याप्त घनीभूत ऊर्जा के एक अंश मात्र से ही विश्व-ब्रह्मांड ऊर्जस्वित है। सारी प्रकृति चैतन्य एवं गतिशील है। इसी ऊर्जा भंडार का सम्पर्क हमारे शरीर की ऊर्जा का नियमन करता है।

तनाव की बढ़ती स्थिति पर नियंत्रण करना अत्यावश्यक है अन्यथा इसके कारण संपूर्ण सृष्टि का विनाश ही हो जायेगा। हिटलर जैसा तनावग्रस्त जननेता कुछ ऐसा न कर बैठे कि मनुष्य का अस्तित्व ही इस पृथ्वी से मिट जाये। इसका निदान एक मात्र अपने को उपयोगी कार्यों में व्यस्त रखते हुए प्रवृति के अनुरूप ऊर्जा से अपने को जोड़ना होगा जिससे हमारी ऊर्जा अक्षय बनी रहे तथा हम अपने लक्ष्य की प्राप्ति की ओर सदा अग्रसर होते रहें। अपनी शक्ति और क्षमता भर कार्य करते हुए सदा सक्रिय रहें। आहार-व्यवहार के संयम तथा सकारात्मक चिंतन को जीवन का अभिन्न अंग बनाये रख प्रकृति तथा आध्यात्म का पाथेय लेकर जीवन यात्रा करते हुए हम अपना जीवन सार्थक बना लें-तनाव, विषाद तथा थकान को हरा दें।

'जीव भगवत्स्मरण में जितना आनन्द पाता है, उतना ही वह अपने कृत्यों को भगवदर्पण कर अपनी चिन्ताओं से निश्चिंत हो जाता है।'

--श्री गुरुदेव

कुछ सिद्ध योग और मंत्र

(जीवन में कभी-कभी मनुष्य ऐसी समस्याओं से ग्रस्त हो जाता है जिनके समाधान से उसे अपना जीवन सार्थक लगने लगता है, जैसे संतान-बाधा, प्रोन्नति में अवरोध, दारिद्रय एवं कष्ट के कारण जीवन सूना-सूना लगने लगता है । इन्हीं चन्द समस्याओं के निराकरण के लिये यहाँ कुछ सिद्ध योग तथा मंत्र प्रस्तुत किये जा रहे हैं । जिनका प्रयोग कर आपके जीवन में प्रसन्नता तथा संतुष्टि बढ़ सकती है । इन्हें आजमायें और हमें भी सूचित करें जिससे हम अपने प्रयोगात्मक अनुसंधान के परिणाम को जान सकें तथा उसका रिकार्ड रख सकें । - संपादक)

१. गर्भ प्रकरण :

अ) गर्भ धारण करने के प्रयोग : बंध्या या मृत-वत्सा स्त्री शिवलिंगी के २७ बीज, पीपल की जटा ६ ग्राम, गजकेसरी ६ ग्राम को पीसकर तन टिकिया बना लें । गाय के दूध की खीर बना लें और इस खीर में फिर गोघृत तथा शक्कर डालकर मीठा तथा स्वादिष्ट बना लें । उसमें शिवलिंगी की ६ बीज तथा उपर्युक्त एक टिकिया मिला दें । पतिसंग के पश्चात् इस खीर को खायें । इस प्रकार तीन दिन करने से गर्भ ठहर जाता है ।

ब) मासिक धर्म के पश्चात् शिवलिंगी के ५ बीज से बढ़ाकर ११ बीज ठंडे पानी के साथ लेने से पुत्र-गर्भ ही उत्पन्न होता है ।

इस दोनों प्रयोगों के साथ यदि हमारा तैयार किया हुआ यंत्र भी शुभ मुहूर्त में धारण कर लें, तो कहना ही क्या । स्नान कर सूर्य को अर्घ्य प्रदान करें तथा सूर्य मंडल से आती हुई किरणों को अपने कुक्षि में प्रवेश करती हुई अनुभव करें । साथ ही जैसे पुत्र की कल्पना करेंगी वैसा ही पुत्र प्राप्त होगा । अर्घ्य के पश्चात् एक माला गायत्री मंत्र का जप करना श्रेयस्कर होगा ।

इसके साथ यदि साये की गांठ बायीं ओर कसकर बांधें तो गर्भ दायीं कुक्षि में आ जाता है ।

कुबेर यंत्र

८	१५	२	७
६	३	१२	११
१४	६	८	१
४	५	१०	१३

२. श्री प्रकरण :

अ) यदि नीचे लिखे यंत्र को शुभमुहूर्त में भोजपत्र पर अष्टगंध से लिखकर धारण करें अथवा व्यापारिक प्रतिष्ठान के किसी महत्वपूर्ण स्थान (तिजोरी) में रख नित्य पूजा करें तो लक्ष्मी की वृद्धि होगी ।

ब) इसके साथ यदि स्वयं या किसी कर्मकांडी ब्राह्मण से कुबेर यंत्र सिद्ध कराकर रख लें तथा नित्य उस यंत्र को धूप-दीप दिखाकर एक माला कुबेर यंत्र का जप करें तो अटूट लक्ष्मी आती रहेगी । कभी धनाभाव नहीं रहेगा ।

३. कुबेर मंत्र :

ॐ श्रीं ॐ ह्रीं श्रीं ह्रीं क्लीं श्रीं क्लीं वित्तेश्वराय नमः ।

कुबेर यंत्र को लाल रेशमी या मखमली कपड़े में गुप्त स्थान में रखें । यदि स्वयं किसी कारणवश घर से बाहर रहें तो पत्नी अथवा पुत्र को धूप-दीप दिखाने के लिये कह दें ।

४. वाद-विवाद संबंधी :

वाद-विवाद तथा अभियोग में विजय प्राप्त करने के लिये प्रतिद्वन्द्वी तथा हाकिम के सामने उपस्थित होते समय एक पीले रुमाल में एक पीत पुष्प रखकर ग्यारह बार बगलामुखी मंत्र का जप कर मन में अपने विजय की सुदृढ़ भावना बनाये रखें । निश्चित ही विजय आपकी होगी ।

जीवन शाश्वत है : मृत्यु जीवन का अंत नहीं

समस्त प्राणी जगत में दो ही मूल इच्छायें हैं और अन्यान्य इच्छायें उन्हीं मूल इच्छाओं का विस्तार। वे इच्छायें हैं जिजीविषा और मृत्यैष्णाः जीवन की अदम्य लालसा और मृत्यु का अलिंगन करने की अभीप्सा। इन्हीं दो पाटों के बीच जीवन प्रवाह अविरल गति से बढ़ता रहा है। इन दोनों ही पक्षों पर वैज्ञानिकों तथा मनीषियों ने व्यापक विचारमंथन किया है। जीने की इच्छा हमारी सुरक्षा भावना का मूल कारक है। जीने के लिये ही पारिवारिक संगठन, धन संग्रह, पद प्राप्ति की दौड़, समुदाय- सृजन और अनेकानेक वस्तुओं के संग्रह की प्रवृत्ति सभी प्राणियों में पाई जाती है। किन्तु रोग-व्याधि से जर्जर काया और फिर सारे संग्रह व्यर्थ एवं निरर्थक लगने लगते हैं तो मनुष्य की इच्छा मृत्यु का आलिंगन कर विश्राम की अदम्य लालसा से एक बारगी भर उठता है। पहले जीवन के रहस्य को समझने के लिए वैज्ञानिकों ने अनेकानेक शोध ग्रंथ लिखे, ज्ञान-विज्ञान की अनेक शाखायें सृजित कीं तथा सभी प्राणियों की जीवन-सुरक्षा हेतु साधनों का अध ययन किया गया फ्रायड, एडलर, जुंग आदि प्रभृति वैज्ञानिकों ने सिद्ध किया कि जीवन की संपूर्णता में जीने के इस सुख का उपयोग सभी प्राणी कर लेना चाहते हैं। स्त्री, पुत्र, ध न, बंधु-बांधव के साथ जीवन के सुख की अन्तरिम इच्छा अभिव्यक्त होती रही है किन्तु यदा-कदा यह भी देखने में आया कि वार्धक्य, अशक्तता और विवशता की अन्तर्व्यथा जब घनीभूत होने लगती है तो व्यक्ति मृत्यु का आलिंगन करने कि लिए तैयार रहने में ही बुद्धिमता समझता है और अन्ततः उसे स्वीकार कर जीने का मोह छोड़ मृत्युलोक में जाने के लिए समुत्सुक हो जाता है।

जीवन और मृत्यु दोनों ही एक ऐसे अभेद्य रहस्य के दो पक्ष हैं जिनके प्रति साधारण मनुष्य अपनी सूझबूझ से विचार करता आया है तथा प्रतिभाशाली वैज्ञानिक इस रहस्य को अपने ढंग से प्रयोगात्मक आधार पर सुलझाने तथा समझने का प्रयास करते रहे हैं। मृत्यु के तथ्यों से लेकर विज्ञान की एक नई विधा का जन्म हो चुका है, मृत्यु पर विजय पाने की लालसा से इसके सभी पक्षों पर गहन विचार-विमर्श होने लगा है और विज्ञान की एक नई शाखा के रूप में मृत्युविज्ञान रूपायित हो रहा है तथा मरणासन्न व्यक्तियों का विधिवत् अध्ययन कर उसका अभिलेख तैयार किया जा रहा है। मृत्यु का भय क्या है ? मृत्यु के निकट होने का आभास होने पर मनुष्य की क्या प्रतिक्रिया होती है ? क्या समस्त जीवों को मृत्यु-बोध होता है ? इन्हीं तथ्यों को लेकर मृत्यु-विज्ञान विकसित किया जा रहा है, जिसे अंग्रेजी में विश्वव्यापी नाम दिया गया है थेनाटोलॉजी (Thenatology)। पौर्वात्य दर्शन में मृत्यु-विज्ञान पर महत्वपूर्ण खोजें हुईं तथा ऋग्वेद से पुराण काल तक मृत्यु तथा मरणोत्तर जीवन के विभिन्न पहलुओं पर पर्याप्त प्रकाश डाला गया है। ऐसा माना गया है कि पंच महाभूतों से सृष्ट शरीर मृत्यु के पश्चात् अपने-अपने महाभूतों में विलीन हो जाता है किन्तु जीवात्मा का अस्तित्व रहता है जो सूक्ष्म तन्मात्राओं के साथ अपने संस्कार तथा इन्द्रिय बीजों को लेकर देहान्तर की यात्रा करता है। ऋग्वेद में कहा गया है:

अवसृजपुनरग्ने पतृश्चो यस्त आहुतश्चंरति स्वधामिः।
आयुर्वसान उपवेतु शेषः सं गच्छतां तन्वा जातवेद।।

(ऋ० १०/१६/०५)

मृत्युपरान्त जब पंचतत्व अपने-अपने में मिल जाते हैं, तब जीवात्मा बचा रहता है तथा देह धारण करता है। ऋग्वेद के १०/५४/६/७ में परमात्मा को 'असुनीति' शब्द से अभिष्यक्त करने का तात्पर्य है कि वह प्राणरूप जीव को भोग के लिये एक देह से दूसरी देह तक ले जाता है।

जीवन शाश्वत् है तथा पंचभूत भी शाश्वत् हैं। जीव तो वही रहता है, किन्तु विभिन्न शरीर धारण कर अपने संस्कार तथा कृतकर्मों के भोग के लिये भिन्न-भिन्न शरीर धारण करता है :

आ यो धर्माणि प्रथमः ससदततो वपूंषि कृणुषे पुरुणि।
धास्युर्योनिं प्रथम आ विवेश्रा यो वाचमनुदितांचिकेत्।।

(अथर्व० ५/१/२)

आत्मा नित्य है, किन्तु कर्म से प्रेरित होकर वह पिता द्वारा पुत्र-शरीर में प्रविष्ट होता है। 'जायते पुनः' से पुनर्जन्म की पुष्टि होती है जो जीवन की शाश्वत धारा की पुष्टि करता है। जीवन केवल मानव स्वरूप में ही विद्यमान नहीं रहता है, वरन् पशु, जल, वनस्पति, औषधि इत्यादि नाना स्थानों में भ्रमण तथा निवास करता हुआ बार-बार जन्म धारण करता है। कठोपनिषद् पिता के द्वारा 'मृत्यवे त्वां ददामीति' पर पश्चाताप मग्न बाजश्रवस को सांत्वना प्रदान करते हुए नचिकेता कहता है कि यह शरीर तो धान्य की भांति मरता है और उसी तरह पुनः उग आता है। **'सत्वमिव मर्त्यः पच्यते सत्वमिव जायते पुनः'** (कठ० १/१/६) फिर मृत्यु विषयक ज्ञान के लिए पुनः आचार्य यम के पास भेज दिया। तीन दिनों तक भूखा रहने के बदले यम ने उसे तीन वरदान मांगने को कहा तो उसने तीसरा वर आत्म तत्व के रहस्य बताने का मांगा- **'आत्मा की सत्ता है या नहीं अस्तीत्थेके नायमस्तिति चैके** (कठ० १/१/२०)। इस प्रकार जीवन-मृत्यु के शाश्वत् प्रश्न का समाधान करते हुए जीवन की शाश्वत धारा का प्रतिपादन करते हैं--

तं विधाच्धुक्रममृतं तं विधच्चुक्रमसृतम्।।

(कठ० २/३/१७)

यह जीवात्मा अन्तरिक्ष में, परमात्मा में, हृदयाकाश में रहता है, यज्ञ करता है, पृथ्वी पर जन्म लेता है; परन्तु शरीर में अतिथि मात्र है। योगवशिष्ठ में पुनर्जन्म के विषय में कहा गया है कि देहान्तर में जीवन शाश्वत है। शरीर नष्ट हो जाता है तो जीवन दूसरे रूप में यात्रा करता है, किन्तु नष्ट नहीं होता--

मृतोनष्ट इतिप्रोक्तो मन्ये तच्च मृषास्यसत्।
स देश कालानतरितो भूत्वा भूत्वानुभूयते।।

(यो०व० ५/७१/६५)

इसकी अनुभूति भी जीवधारियों को होती है जिसके फलस्वरूप संवेदनाओं तथा संवेगों की अनुभूति देहधारियों को बारंबार होती रहती है, गीता में भगवान श्री कृष्ण ने **'बहूनि में व्यतीतानि जन्मनामान्ते'** (गीता- ७/१६) में भी जीवन की शाश्वतता पुनर्जन्म के माध्यम से प्रमाणित किया है। न्याय-दर्शन (१/१/१४) में 'एषोहदेवः प्रदिशोणुसर्वा', 'पुरूत्पत्ति प्रेत्यभावः' मरकर जन्म लेने का नाम प्रेत्यभाव है तथा नित्य आत्मा का पुराने शरीर से संबंध-विच्छेद मरण तथा नूतन शरीर के साथ संबंध जोड़ना जन्म है। नैयायिक भी जीवात्मा का जन्म-मरण मानते हैं।

एक योगनिष्ठ व्यक्ति अपनी अन्तश्चेतना के संस्कारों पर संयम कर अपने गत जीवन की सभी घटनाओं का साक्षात्कार कर सकता है। ऐसे अनेकशः योगियों की कथा जन-मानस में सुरक्षित है। स्वयं भगवान बुद्ध को अपने गत ५०० जन्मचक्रों का पूर्ण ज्ञान था। वेदान्त में कहा जाता है कि हमारे चित में मधुमक्खी के छत्ते की भांति या कबूतर की तरह पूर्व स्मृतियां संग्रहित रहती हैं। आत्मा मध यवर्ती शक्तियों का केन्द्र है जिन्हें अभिव्यक्त करने के लिए उपयुक्त क्षेत्रों की आवश्यकता होती है। एक देह को छोड़कर दूसरे शरीर के ग्रहण करने तक का जो समय है वह प्रेत काल है, वह भी जीवन-धारा का एक अंश ही है। वहां भी जीवन-धारा कुंठित नहीं होती। श्रीमद् भागवत महापुराण में 'गोकर्ण तथा धुंधकारी' की कथा भी मृत्यु विज्ञान पर प्रकाश डालती है जिसनें सप्ताह सुनने के पश्चात् दिव्य शरीर धारण किया देवर्षि नारद, महाराज दैत्यराज बलि, नल-दमयन्ती की पूर्व-जन्मों की कथा पुराणों से ज्ञातव्य है। लोमश ऋषि ने बताया कि मंथरा जन्मांतर में प्रहलाद की पौत्री तथा विरोचन की पुत्री थी। महाभारत के वन पर्व में यह कथा विस्तार से आई है। श्रीमद् भगवद्गीता में उत्तरायण-दक्षिणायन में मृत्युप्राप्त जीवात्मा की दशाओं का वर्णन हुआ है। भारतीय मनीषियों ने मृत्यु के समय जीव की भावदशा के संबंध में जैसा वर्णन किया

है ठीक वैसा ही वर्णन प्रयोगकर्मा आधुनिक विज्ञान ने भी सिद्ध किया है और इसपर अभी-भी सतत् शोध जारी है। 'गरुड़ पुराण' मृत्यु-विज्ञान पर भारतीय शोध का एक अनुपम ग्रंथ है जिसमें मृत्युपरान्त तथा पुनर्जन्म के अंतराल में जीवात्मा की गति, भावदशा, इच्छा-अभिच्छा, आदि का विशद् वर्णन हुआ है। मृत्यु के पश्चात् जीव को अपने शरीर का मोह होता है तथा जब वह चिता में भस्म हो जाता है तो प्रेतत्व में रहने तक अपने द्वारा किये गये कर्माकर्म का फल भोगता हुआ पुनर्जन्म तथा अन्ततः जीवनरूप मोक्ष में विश्रान्त हो जाता है। अब आगे हम पाश्चात्य शोध का संक्षिप्त लेखा जोखा प्रस्तुत करेंगे।

मरणासन्न व्यक्तियों से पूछताछ के क्रम में ऐसा देखने में आया है कि जैसे-जैसे मृत्यु समीप आती जाती है, मृत्यु का भय कम होता जाता है। रोगवृद्धि के साथ-साथ ऐसे व्यक्ति की धार्मिक आस्था बढ़ने लगती है तथा चिन्ताओं में कमी आती जाती है। मृत्यु के २४ घंटे पूर्व पश्चिमी जर्मनी के डॉ० लोथर विट्जल ने प्रयोग के आधार पर ऐसा अपना निष्कर्ष निकाला है।

मृत्यु-विज्ञान पर गहन शोधकर्ता बोस्टन के डॉ० मूर रसेल क्लेचर ने अपने दीर्घकालीन शोध एवं गहन अध्ययन के फलस्वरूप जो निष्कर्ष मरने के बाद जी उठने वाले रोगियों के संबंध में दिया है जो उनकी पुस्तक Treatise on Suspended Animation में अभिलिखित है। उन्होंने उक्त पुस्तक में गार्थाइर नगर की श्रीमती जान हलैस्क के संबंध में लिखा है कि वे मृत घोषित किये जाने के तीन दिन बाद जी उठीं। उन्होंने मृत्यूपरान्त जिस परीलोक का वर्णन किया वह अतीव मनोरंजक है जहां उन्होंने अनेक मृतात्माओं को देखा तथा बातचीत की। वे मृतात्माओं में प्रसन्नचित्त होकर विना पंख के आसमान में उड़ रहीं थीं या उड़ती-सी प्रतीत होती थीं।

'लाइफ आफटर लाइफ' में डॉ० रेमण्ड मूरी ने भी पुनर्जीवन तथा मरणोपरान्त मृतकों की अवस्था का विशद् उल्लेख किया है। मरने के बाद और पुनर्जन्म के पूर्व की अन्तरावस्था की १५० घटनाओं का वर्णन किया है। मृत्यु के समय एक व्यक्ति ने बताया कि उसके मस्तिष्क में भनभनाहट की आवाज़ गूंजती रही और फिर सब सामान्य हो गया और वह ठंडा हो गया। किसी अन्य व्यक्ति ने अपने को अन्तहीन गर्त में गिरा अनुभव किया तथा तेजी से नीचे की गहराई में उतरता चला जा रहा हो ऐसा अनुभव किया।

ओलिवर लॉज, क्रूक्स नामक व्यक्तियों ने स्वीकार किया है कि मृत्यु के बाद भी चेतना का क्षरण नहीं होता है। शरीर मृत हो जाने पर भी चेतना ज्यों की त्यों काम करती रही। इससे यह सिद्धान्त गलत हो गया कि शरीर की तरह चेतना भी विभिन्न पदार्थों का संगठित रूप है, वरन् चेतना पदार्थ से पृथक सत्ता है जो मृत्यु का भी साक्षी है तथा स्वतंत्र है। इस तथ्य के प्रमाण में उन्होंने मृतात्माओं का आहवान कर अपना निष्कर्ष अपनी पुस्तकों में दिया है।

ऐसी एक आत्मा का अनुभव 'फ्रांटियर ऑफ दी आफटर लाईफ' में इसके लेखक एडवर्ड सी रेण्डेल ने दिया है। मरने के बाद उसने अपने को अपने स्वजन संबंधियों से घिरा पाया। उसका मृत शरीर बिछावन पर पड़ा है किन्तु तैजस शरीर किंवा चेतन शरीर खड़ा था। शरीरिक वेदना बिल्कुल मिट गई थी तथा उसे लेने कुछ आत्माऐं आई हुई थीं जो उसे चलने के लिए कह रही थीं तथा विश्वास दिला रही थीं कि वह मर चुका है।

मूर्धन्य मनोवैज्ञानिक कार्ल जुंग ने अपने मरणोपरान्त जीवन के अनुभव की चर्चा अपनी पुस्तक "Memories of Dreams Reflections" में की है। दिल का दौरा पड़ने से उनकी मरणासन्न स्थिति हो गई थी और आक्सीजन के सहारे उनका उपचार हो रहा था। अचानक उन्होंने अपने को हज़ारों मील दूर अधर में लटकते हुए पाया। उन्होंने अनेक शहरों का दिग्दर्शन किया तथा अन्यान्य रहस्यमय चीजें भी देखीं। इतना हल्का अनुभव करने लगे कि इच्छामात्र से जिस दिशा में चाहें जा सकते हैं। अपने इस परिवर्तन की स्मृति के आधार पर उन्होंने मरणोत्तर जीवन के अलौकिक अनुभवों पर मृत्यु के बाद भी जीवन है कि सिद्धांत पर अपना विश्वास व्यक्त किया है।

परामनोवैज्ञानिक डॉ० किंग हेलर ने अपनी प्रसिद्ध

रचना "The Immortal Soul" में मृत्यु से वापस लौटे व्यक्तियों के संबंध में कई घटनाओं का उल्लेख किया है। हृदय के तीन दौरों के पश्चात् ओन्टोरियो के कोस्टल क्षेत्र के मानव संपदा के निर्देशक हर्व ग्रिफिन को १६४४ में चिकित्सकों नें मृत घोषित कर दिया- किन्तु चंद मिनटों के बाद वे जीवित हो उठे। मृत्यु के उपरान्त उन्होंने अपने को तीव्र प्रकाश से आवृत पाया किन्तु उनके तथा उनकी ओर बढ़ते प्रकाश में एक काली छाया उनकी रक्षा करती रही। अचानक समुद्र तट पर उस प्रकाश में उनका कोई परिचित जाना-पहचाना चेहरा प्रकट हुआ जो सलेटी रंग का सूट पहने हुए था। उसने कहा- 'आ जाओ, सब ठीक है।' अचानक उसके सीने में तेज दर्द उठा और आवाज भी सुनाई दी- 'क्या मैं बिजली के झटके दूं?' दूसरी ओर से आवाज आई- 'अभी नहीं' इसकी आयु पूरी नहीं हुई है। इसे ले जाओ।' और इसके साथ ही वे अपने भौतिक शरीर में लौट आए।

मोनरो रिसर्च इन्सटीट्यूट वर्जिनिया के राबर्ट ए. मोनरो ने एक सम्मेलन में लगभग १ हजार व्यक्तियों के मरणोत्तर जीवन के अनुभव से लोगों को अवगत कराया। उन्होंने स्वयं दूसरी दुनिया में प्रवेश करने तथा एक अत्यन्त विकसित सभ्यता से सम्पर्क साधने तथा विचार-विमर्श के अलौकिक घटनाओं का संग्रह अपनी पुस्तक "Journeys Out of the Body" में दिया है। डॉ० एण्ड्रियूज़ रीस्क ने अमेरिका के एक वैज्ञानिक डॉ० केरियोस ओसिस का उदाहरण प्रस्तुत किया जिन्होंने लगभग एक हजार 'शरीर से परे' अनुभवों का सविस्तार उल्लेख किया है।

प्रायः सबों ने दिव्य प्रकाश का अनुभव किया। अपने मृत सगे संबंधियों से मिले। मृत्यु के पश्चात् शांति तथा प्रसन्नता की अनुभूति तीव्र हुई किन्तु पुनः शरीर में वापस होने पर कष्ट-सा होने लगा।

अमेरिका के जॉन अलेक्जेन्डर ने मरणोत्तर जीवन को स्वीकार करते हुए बताया कि अपूर्ण इच्छाओं के कारण मरने के बाद भी व्यक्ति को कष्ट होता है। तथा अंधकारमय वातावरण से गुजरना पड़ता है। इसके विरुद्ध सज्जन व्यक्ति को चिर आनन्द की अनुभूति होती है। उन्होंने अपनी पुस्तक "Ghost" में अब्राहम लिंकन की प्रेतात्मा का भी विशद् वर्णन किया है। लिंकन का प्रत्यक्ष अनुभव तो राष्ट्रपति रुज़वेल्ट, नीदरलैण्ड की महारानी तथा विंस्टन चर्चिल को भी हुआ था। डॉ० मोनरो ने एक सिंगल जेनरेटर का भी विकास किया है जिससे शरीर से आत्मा या सूक्ष्म शरीर की पृथकता के समय हृदय की ध ड़कनों की ध्वनि रिकार्ड की जा सकती है।

पुनर्जन्म के प्रकरण में ऐसी कई घटनाओं का उल्लेख परामनोवैज्ञानिकों ने किया है, विगत जीवन के चाल-ढाल और आकृति में इतना सामंजस्य होता है वे अपने पूर्ववर्ती जीवन के ट्रू कॉपी हों।

सुकरात ने विष-पान के उपरान्त यह घोषणा की विष के प्रभाव से यद्यपि उनके अंग सुन्न होते जा रहे हैं किन्तु उनका अस्तित्व पूर्ववत् है और वे इसका अनुभव कर रहे हैं। सुकरात ने अंतिम सत्य का उद्घाटन किया कि मृत्यु जीवन का अंत नहीं है। जीवन शाश्वत् है और मृत्यु के बाद भी उसकी गति रुकती नहीं, उसका प्रवाह अविरल बना रहता है। संभव है जीवन की यह अविरल गति बीच-बीच में पुनः रुपायित हो जाती हो जिसे हम पुनर्जन्म कहते हैं तथा यदाकदा यह अविरल प्रवाह शाश्वत् जीवन के सागर में आकर निश्चेष्ट हो जाती हो जिसे हम मोक्ष कहते हैं। इतना फिर भी सत्य है कि जीवन शाश्वत् है तथा अनन्त है।

If a thing is moraly wrong, it can never be politically right

- Foy

शिवा-शिव समूह समाचार : अनामा, जून २०००

१. ध्यान-शिविर : २८ मई २००० रविवार को स्थानीय लोगों को लेकर श्री श्री १००८ गुरुदेव अवधूत कृपानंदनाथ ने एक ध्यान शिविर का आयोजन किया। इस एक दिवसीय शिविर के समापन अवसर पर श्री गुरुदेव ने कहा कि ध्यान ही आत्मा का आहार है जिससे यह दिव्य, संवेदनशील तथा उच्चतर रहस्यों के भेदन में सक्षम होती है। विपश्यना से मिलती-जुलती यह ध्यान विधि शिवा-शिव समूह का अपना अन्वेषण है जिसका केवल १५ मिनट एकाग्रता के साथ अभ्यास करने से तनाव-मुक्ति में सफलता प्राप्त कर सांसारिक जागरुकता के साथ दिव्य अनुभूति होती है। वरिष्ठ पत्रकार श्री अनूप कुमार वाजपेयी ने बताया कि अवधूत गुरु के निर्दिष्ट मार्ग से साधना, ध्यान करने से वस्तुतः परमानन्द की प्राप्ति होती है। मृण्यमय काया में चिन्मय ब्रह्म की अनुभूति बिना ध्यान के संभव नहीं। अतएव, श्री गुरुदेव के प्रति पूर्ण श्रद्धा रखते हुए हमें ध्यान का अभ्यास करना चाहिए जिससे सांसारिक जीवन में तनाव-रहित होकर अपनी कार्य-क्षमता की वृद्धि हो सके तथा आध्यात्मिक सुख मिल सके। श्री अवध से आये संतों ने श्री राम कीर्तन से थोड़ी देर तक एकत्र लोगों को आनंदित करते हुए पूरे वातावरण को भक्तिमय बना दिया। उसके बाद गुरुदेव के सान्निध्य में ध्यान का कार्यक्रम प्रारंभ हुआ। आठ घंटे के इस आयोजन में समय का कुछ पता ही नहीं चला।

२. १२वीं अखंड कीर्तन पद-यात्रा : दुमका से श्री श्री वासुकिनाथ धाम की दूरी २६ कि.मी. है। श्री श्री वासुकिनाथ भी श्री श्री वैद्यनाथ की तरह ज्योतिर्लिंग ही है जिसपर विद्वानों को शोध करना चाहिए। यही एकमात्र स्थान है जहां इतने निकट दो-दो ज्योतिर्लिंग हैं। 'नागेशो दारुकावने' की पौराणिक उक्ति में नागेश श्री वासुकिनाथ ही हैं और दुमका ही दारुकावन है। श्री श्री वासुकिनाथ के प्रभाव तथा कृपा की अनेकशः किंवदन्तियां इस क्षेत्र में सुनने को मिलती हैं।

२६ कि.मी. की यह दूरी श्रद्धालुओं द्वारा अखण्ड कीर्तन करते हुए तय की जाएगी जिसमें इस प्रमंडल के उच्चाधिकारी भी शामिल होंगे। गणमान्य नागरिक विभिन्न सवारियों के साथ चलते हैं तथा अनेकानेक कीर्तन-मंडलियां 'हरे राम हरे राम, राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण, कृष्ण कृष्ण हरे हरे।' की धुन पर कीर्तन करते हुए इस यात्रा को पैदल ही पूरा करेंगी। विभिन्न वाद्ययंत्रों के विशिष्ट वादक अपने साज पर इस धुन को बजाते हुए मंडलियों के साथ चलेंगे। ऊंट, हाथी व अश्वारूढ़ व्यक्तियों के साथ दुमका प्रमंडल के उच्चाधिकारी भी अपने-अपने वाहनों के साथ इसमें भाग लेंगे। सचमुच में इसकी अनोखी छवि दर्शनीय होगी। इस कीर्तन-यात्रा में आपका भी स्वागत है। बस आप ११ जून २००० को आठ बजे तक श्री गुरुदेव के आवास पर पहुंच जायें। आपके लिए सारी व्यवस्था हो जायेगी।

वाजपेयी निलयम, नया पाड़ा से ज्येष्ठ शुक्ल गंगा दशहरा उत्सव पर रविवार विक्रम सं.२०५७ तदनुसार ११ जून २००० को १२ एवं १ बजे के बीच बाबा वासुकिनाथ धाम के लिए रामरथ के साथ पैदल अखंड संकीर्तन यात्रा प्रारंभ होगी। इसमें आयोजक श्री अनूप कुमार वाजपेयी ने सब को सपरिवार तथा अन्य धर्मानुरागी भक्तों का स्वागत करते हुए आमंत्रित किया है। प्रेरणास्वरुप अपने मार्ग गुरु श्री श्री १००८ अवधूत कृपानंदनाथ जी के प्रति भी उनका नाम देकर श्रद्धा व्यक्त की गई है।

३. अफवाहों से बचे : सीतामढ़ी तथा मुजफ्फरपुर में कतिपय लोगों द्वारा समूह के प्रति अफवाहें फैलाने के कुछ उदाहरण सुनने में आ रहे हैं। यह तो कौलमार्ग की विशिष्टता है कि इसमें जो भी आते हैं उनके वापस जाने का मार्ग बन्द हो जाता है। इसे सभी साधक जानते हैं कि 'गुरु त्यागात् भवेत् मृत्यु, मंत्र त्यागात् दरिद्रता'। तब फिर इन अफवाहों पर ध्यान देने की कोई आवश्यकता नहीं। इस मार्ग में निष्काषित करने का कोई विधान नहीं है। इसमें शामिल हो जाने के बाद निष्कासन का मार्ग बंद हो जाता है। यदि किसी साधक के मन में दुर्भावनावश अनर्गल बातों को फैलाया जाता है तो उसकी आध्यात्मिक स्थिती तो कुंठित होती ही है। उनकी सांसारिक यात्रा भी

संकटापन्न कलान्तर में हो जाती है। हां, यह अलग बात है कि कोई समूह की गतिविधियों में सहयोग न दे और दुर्भावनावश अनर्गल बातों को फैलाता रहे। इससे शिवा-शिव समूह विज्ञापित ही होता है। अतएव, आप उन अफवाहों पर ध्यान न देकर समूह के हित में सोचें और मानव कल्याणार्थ इसके आयोजन में पूर्व की भांति शामिल होकर इसके सक्रिय अंग बने रहें। गुरुदेव सबके प्रति अनुग्रह एवं करुणा से भरे हुए हैं। वे किसी का भी, चराचर जगत के किसी भी प्राणि का अहित करने की सोचते भी नहीं। गुरुदेव सभी शिष्यों के प्रति, अपने विरोधियों के प्रति भी कल्याण-कामना से आपूरित हैं। आप स्वयं यदि माला-मुद्रा सौंप देते हैं या अनर्गल प्रलाप करते चलते है। तथा केवल समूह में दोष-दर्शन ही करते हैं तो इसमें समूह या श्री गुरुदेव का क्या दोष? आप सब शिवा-शिव समूह के अभिन्न अंग हैं और इस सोच के लोगों के प्रति भी समूह सद्भावना से भरा हुआ है। श्री गुरु एवं समूह के प्रति समर्पण भाव बनाए रखें तथा दोष-दर्शन न कर, इसके प्रति अपनी आदर-श्रद्धा की भावनाओं की अग्नि प्रज्वलित रखें। समूह के भावी विस्तार की योजना के कारण ही कतिपय साधकों को संप्रति समितियों से अलगकर सुरक्षित रख लिया गया है।

४. गुरुपूर्णिमा का आयोजन : समूह के पत्रांक ००६१/गु०-२००० दिनांक १४.५.२००० को श्री श्री १००८ मार्ग गुरु के आप्त सचिव तथा प्रवक्ता भैरव ब्रजानंदनाथ ने सभी शिष्यों, भक्तों, प्रेमियों तथा जिज्ञासुओं को आमंत्रित करते हुए गुरु पूर्णिमा के आयोजन की सूचना प्रकाशित की है।

इस वर्ष गुरुपूर्णिमा का महोत्सव दिनांक १६ जुलाई २००० को मनाया जाना है। सम्पूर्ण आध्यात्मिक जगत में इस पर्व का अन्यतम महत्व है।

इस वर्ष यह कार्यक्रम छिन्नमस्तिका, रजरप्पा की पावन भूमि पर आयोजित किया जाएगा। श्री गुरुदेव का आगमन रविवार १६ जुलाई को रजरप्पा में प्रातः आठ बजे होगा। पूरे कार्यक्रम के संचालन का दायित्व शिवा-शिव समूह, शाखा जारनडीह के शिष्यों द्वारा किया जाएगा। वे इसके लिए समिति-उपसमितियों का संगठन कर सुचारु रुप से इसका आयोजन निम्न प्रकार से करेंगे :-

प्रातः ८.०० - **श्री गुरुदेव का आगमन, ध्वजारोहण एवं स्थलचयन।**

९.०० - **रुद्राभिषेक एवं सप्तशती पाठ।**

१२.०० - **प्रसाद वितरण। भोजन।**

अपराहन १३.०० - **भजन, संगीत, कीर्तन।**

१४.०० - **श्री गुरुदेव का प्रवचन कार्यक्रम।**

१५.०० - **ध्यानयोग तथा श्री गुरुदेव के साथ ध्यान सत्र में शामिल होना।**

१७.०० - **आगन्तुकों, भक्तों, प्रेमी एवं जिज्ञासुओं के साथ भेंट तथा समस्याओं का निदान।**

रात्रि १९.०० - **दीक्षा कार्यक्रम।**

२१.०० - **शिष्यों के साथ विचार-विमर्श, गुह्य-ज्ञान के सम्बंध में गुरुदेव से अंतरंग वार्ता। इसमें केवल शिष्य ही भाग ले सकेंगे।**

२३.०० - **रात्रि प्रसाद एवं विश्राम।**

१७.७.२०००

प्रातः ६.०० - **श्री गुरु-पूजन तथा विदाई।**

विशेष : (१) अनुशासन की पूरी व्यवस्था, व्यर्थ बैठकर अपना तथा गुरुदेव का समय नष्ट न करें। भैरव स्तर के साधक ही आवश्यकतानुसार श्री गुरुदेव से मिलकर निर्देश प्राप्त कर सकेंगे। श्री गुरुदेव की सुरक्षा व्यवस्था भैरव महदानन्दनाथ के प्रभार में रहेगी। (२) व्यक्तिगत समस्याओं के समाधान के लिए पूर्व में समय निर्धारित करायें। (३) सभी कार्यक्रम यथाशक्य समयानुसार ही किए जाएं। (४) श्री गुरुदेव तथा उनके सचिव भैरव ब्रजानन्द नाथ को रजरप्पा ले जाने तथा वापस रांची पहुंचाने का प्रभार भै० श्रद्धानन्दनाथ का होगा। (५) व्यवस्था एवं संचालन का प्रभार भैरव योगानन्दनाथ का होगा।

सभी अपने कर्तव्यों का पालन श्रम-विभाजन के आधार पर करेंगे। कहीं भी कोई त्रुटि, अनुशासनहीनता, व्यवस्था-विहीनता न रहे।

ह० ***भैरव ब्रजानंदनाथ***
मार्ग गुरु के आप्त-सचिव
रांची

स्थापना पर्व का संदेश

बृहस्पतिवार १० फरवरी, २०००

आत्मस्वरूप,
आज से बीस वर्ष पूर्व
जिन भावनाओं से प्रेरित होकर
हमने विश्वबंधुत्व, विश्व नागरिकता
सतत् कर्मशील रहते हुए एक आदर्श समाज के निर्माण का उद्देश्य लेकर तथा साधना के क्षेत्र में सर्वसुलभ आध्यात्म के प्रचार-प्रसार का संकल्प किया था-
तथा शिवा-शिव समूह के नाम से
कौलमार्गीय साधना-पद्धति को जन-जन तक पहुँचाने की
अभीप्सा लेकर मात्र तीन-चार साधकों के साथ
एक साधक समाज का गठन किया था-
और अब जब लगभग सहस्त्राधिक लोग इसके सपने को साकार करने के लिये एक जुट हो गये हैं
तब उन सपनों को, संकल्पों की अलख जगाने का समय आ गया है।
आप अपना प्रतिवर्ष की भांति बीसवां स्थापना पर्व मना रहे हैं
और इस मांगलिक अवसर पर आपने मुझे आमंत्रित कर
मेरे निर्देशन में श्री गुरू महाराज की इच्छानुरूप
समाज की रचना करना चाहते रहे हैं
जहां प्रेम, भक्ति और करुणा के संगम-स्नान से
कृत-संकल्प होकर एक विश्व-जनीन सर्वकल्याण पंथ का विस्तार कर रहे हैं-
जिसके लिये आपका साधुवाद करते हुए
अपने आशीर्वचनों से आप सबको सिक्त करता हूँ
तथा परमात्मा का अवतरण आपमें हो
इस शुभेच्छा से आप सबका अभिनंदन करता हूँ।
आप सब बीज हैं परमात्मा के
अनन्त संभावनाऐं आपमें छिपी हुई हैं।
मनुष्य बीज है संभावनाओं का
और अनन्त संभावनायें उसमें छिपी हुई हैं-
जिनका सम्यक् विकास हुआ तो
आप परमात्मा बन सकते हैं।
आप यदि अपनी संभावनाओं को पूर्ण विकसित कर सकें
तो परमात्मा बन जाना आपकी संभावना का चरम है।
आपकी पूर्णता का चरम विकास है परमात्मा बन जाने में
एक छोटे से वट बीज का पूर्ण विकास है विशाल वट वृक्ष।
यदि थोड़ी भी कमी रह जाए तो बीज वट वृक्ष न बने
थोड़ी भी अपूर्णता वटवृक्ष के रूप में संभावित नहीं हो सकती
संभावना तो थी परमात्मा बन जाने की
और यदि आप न बन सके परमात्मा
तो आप अपूर्ण रह गये, पूर्ण नहीं हुए
विकास का चरम प्रकट नहीं हो सका।
मनुष्यता का, मनुष्यत्व का चरम विकास है परमात्मा-
यदि थोड़ी भी कमी रह जाती है तो
जिसकी संभावना आपमें है, वह पूरा नहीं हो सकता
परमात्मा के फूल खिले नहीं और आप मिट गये
जो संभव था, वह पूरा हुआ; आप बीज भी न रहे
बीज बिना वृक्ष बने मिट गया।
परमात्मा के फूल खिले नहीं; उसकी सुरभि
दिग्दिगन्त को सुवासित नहीं कर सकी तो
आपका जन्म व्यर्थ गया, परमात्मा की आकांक्षा अपूर्ण रही
बिना फूले-फले वृक्ष भी हुए तो भी बीज की तो संभावना थी
जो प्रभु की आकांक्षा थी, अभीप्सा थी वह पूरी न हुई।
बीज से वृक्ष बनने की यात्रा अज्ञात पर निकलने की
साहस तथा जोखिम भरी यात्रा है-
जिसका पता नहीं है उसे पा लेने की तीव्र चाह है
यदि बीज इस अज्ञात की यात्रा पर निकलते नहीं-
साहस और जोखिम का सामना करने से डर जाये
तो कभी अंकुरित न हो और अंकुरण की व्यथा जो झेल न सके-
अपने को मिट्टी में मिला न दे वह बीज सड़ जायेगा
वृक्ष नहीं बन पायेगा।
उसी प्रकार परमात्मा हमारे लिये अज्ञात है
उसकी खोज की यात्रा पर निकलना होगा
धर्म की यात्रा पर निकलना होगा उस
अनजाने को, उस अज्ञात को ज्ञात करने के लिये-
तो धर्म की यात्रा है परमात्मा की खोज में अज्ञात की यात्रा
हमें संसार का पता होता है, किन्तु हमारी अभीप्सा
परमात्मा की जानने की है, अज्ञात को पाने की है

परमात्मा की खोज में जो यात्रा होती है वह धर्म की यात्रा है
और अनेकशः विपदाओं को झेलना पड़ता है-
क्योंकि जिस अनजाने पथ से गुजरना होगा
उसका कुछ भी पता नहीं है
संसार को खोजना नहीं है-
आप उसमें रहने को अभ्यस्त हैं, क्योंकि आप के चारों ओर
आपके बाहर चारों ओर संसार का ही विस्तार है
जिसे आप जानते हैं और मानते हैं
किन्तु आपको अज्ञात को खोजने के लिये
अन्तर्यात्रा करनी होगी क्योंकि उसका कुछ भी पता नहीं है
खुली आँखों से चारों तरफ़
सांसारिक विस्तार को देखा जा सकता है-
किन्तु अन्तर्यात्रा के लिए आँखें बंद करनी होगी
आँखे बन्द करनी होंगी अन्तर्यात्रा के लिए
क्योंकि जिस अज्ञात की, जिस परमात्मा को पाने की
अभीप्सा, आकांक्षा आपकी है वह अन्तर्मन में है
और आँखें बंद करने पर ही उसकी झलक
मिलनी भी शुरू हो जाती है।
वह जो तुम्हारे अन्तर्मन में विराजमान है
उसकी खोज पर निकलो, वह जो अज्ञात है
उसे पुकारो, उसको इतनी एकाग्रता से खोजो,
इतने गहन बोध से खोजो कि
तुम्हारी आकांक्षा की ऊर्जा, तुम्हारी अभीप्साका एक-एक कण
उसके पाने की, उसके पुकारने में रित जाए।
इतनी उद्दाम आकांक्षा में जियो कि
संसार में जीने की आकांक्षा भी उसे पाने की आकांक्षा बन जाए
इसके सिवा कोई विचार नहीं, कोई अभीप्सा नहीं-
अज्ञेय शिखरों को लांघ जाने का उद्दाम साहस संजोना होगा
अन्य कोई आकांक्षा नहीं, किसी सुविधा, किसी साधन
किसी प्रकार की सुरक्षा की चिन्ता मत करो
इतनी उमंग, इतनी उत्कंठा और इतना आत्मविश्वास
अपने में भर लो कि परमात्मा के पाने के सिवा
कोई अन्य प्रयोजन न रहे-
अन्यथा यात्रा अधूरी रह जाएगी
बीज सड़ जाएगा, जो संभावना तुम्हारे होने की थी
वह असंभव हो जाएगी।
रीते आये थे, रीते रह गए की कसक बनी रह जाएगी।
धर्म की यात्रा में सत्य-पथ पर चलने का अदम्य साहस होना
चाहिए
जिसने यात्रा छोड़ी, सत्यपथ से पृथक हुआ
वह आदमी भी नहीं रह जाता
वह नाम मात्र का आदमी रह जाता है-
जो संसार में भी अधूरा जिया और
अज्ञात तो अज्ञात ही रह जाता है।
उसके भीतर आग नहीं, बुझी राख है
धार्मिक व्यक्ति प्रज्वलित हो उठता है
उसके भीतर आग है
जो हर क्षण, प्रतिपल प्रज्वलित, सघन होती चली जाती है-
एक ऐसा उन्माद, एक ऐसी ऊर्जा से दीप्त होता है
धर्म-पथ का यात्री कि उसे कोई झंझावात मिटा नहीं सकती
वह अस्तित्व के सारे स्वाद अपने प्राणों में उतार लेना चाहता है
वह अंकुरित होता है आसमान छूने की अभीप्सा लेकर
वह पृथ्वी के बाहर ही रूक नहीं जाता
वह पूरे आसमान में पसर जाना चहता है।
अगर आकाश से अपरिचित रहे
तो तुम्हारा पृथ्वी पर रहना भी व्यर्थ है
तुम्हार अस्तित्व कोल्हू के बैल की तरह
जन्म-जन्मांतर तक वर्तुलाकार चक्कर लगाते रहोगे
धर्म की यात्रा सत्यपथ, सत्पथ से होती है
अज्ञात की यात्रा ही तुम्हें उस पथ पर खड़ा करेगी
वही तुम्हें उसके निकट लाएगी
जो शाश्वत है, जीवन का सत्य है।
जीवन निर्माण होगा, आनंद और उमंग से झूमता हुआ
अटके रह जाओगे पृथ्वी पर संसार में
तो जीवन दो कौड़ी का भी नहीं रह जाएगा।
अपनी सारी सहजता, सरलता और निश्छलता खो दोगे
बस सांसारिक जीव की तरह बोझिल, उबाऊ और उमसभरी
जिन्दगी ढोने के लिए विवश होकर मर जाओगे
मिट्टी से उठे भी नहीं कि मिट्टी में मिल गए।
देखो अपने आस-पास के लोगों को
कैसी जिन्दगी जी रहे हैं, बोझ ढ़ो रहे हैं,
जीवन भार हो गया है।
न आंखों में चमक है और न जीवन में कोई गति
न कोई आनंद और न ही कोई उमंग
जीना मजबूरी है, बस, जी रहे हैं
क्योंकि मौत अभी आई नहीं है।

पृथ्वी में तुम जमाओ अपनी जड़ें
मगर उठाओ अपनी शाखाओं को आसमान में ऊँचा उठता है
जो जान लिया गया उसमें रहो
लेकिन खोजते रहो अनजान में ऊँचा उठता है
जो जान लिया गया उसमें रहो
लेकिन खोजते रहो, अनजान को, परमात्मा को
तब तुम एक ही साथ गृहस्थ भी और संन्यासी भी-
और जीने का आनंद तभी है।
जब संसार में तृप्त रहो और प्रभु की चाह लिए उसे खोजो
दोनों का मिलन अपूर्व मिलन है
गृहस्थ है पृथ्वी और संन्यस्त होना, संन्यासी होता है आकाश
इस अपूर्व मिलन से अपने जीवन को निखार लो
तुम क्षितिज बन जाओ पृथ्वी आकाश का मिलन बिन्दु
लेकिन आकाश को भूल गए और बस पृथ्वी को पकड़ लिया
जीवन के चरम विकास से चूक गए।
देह-धर्मा, मिट्टी का मिट्टी, मृण्मय ही मृण्मय बने रहे
आकाश का पता ही नहीं चला, चिन्मय मिला ही नहीं
उस प्रखर गुहा में उतरे ही नहीं-
उस अगम कूप का पता ही नहीं चला-
जहां शून्य ही शून्य, बस शून्य पसरा हुआ है
जहां जल रहा है बिन बाती का दीया
बिना तेल और बिना बाती की दीप-शिखा
ज्योतिर्मयी जहां ज्योति ही ज्योति।
वहां धुआं नही, न कालिख।
तपश्चर्या से अपने को चिन्मय बना लो
तपश्चर्या की दीप-शिखा बन जाओ निर्धूम।
मृण्मय थे। चिन्मय से अटूट संबंध जोड़ लो
अंधकार में अंकुरित हुए, प्रकाश में फैल जाओ
अंधेरे-अंधेरे में रहोगे तो आंखें अंधी हो जाऐंगी
आंखों की चमक बनी रहने दो
प्रेम के प्रकाश में आओ,
ज्योतिर्मय बन जाओ, तभी जीवन सार्थक है।
ठीक भूमि खोजी नहीं, कंकड़-पत्थर बनकर रह गए।
मृत, मरा हुआ, सड़ा हुआ जीवन जीना, वृक्ष न बनोगे
जीवन के स्वर न निकलेंगे
अंकुरण से ही बनोगे द्विज अन्यथा शूद्र ही मरोगे
मनु ने बड़ा ही ठीक कहा कि द्विज बनकर प्रात्रता ग्रहण करते
तुम्हारा जन्म एक दैहिक कृत्य, वासनाजन्य
फिर स्वयं से स्वयं को जन्म देना पड़ता है
अप्तजन, सद्गुरु तथा सद्ग्रंथ तुम्हारे सहयोगी हो सकते हैं
किन्तु स्वयं से स्वयं को जन्म तुम्ही दे सकते हो
पात्रता स्वयं अर्जित करनी पड़ती है, किसी अन्य के भरोसे नहीं,
जीवन की दौड़ में भी उलझे रह गए
कभी धन की दौड़ में, कभी प्रतीष्ठ की दौड़ में
अनगिन दौड़ में अनगिनत बार प्रतियोगी बने तुम
छल-प्रपंच, माया-मोह के पाश में जकड़े रहे, पाप करते रहे
किन्तु मिला क्या ?
सिवा निराशा के, विवशता के
जिसे तुमने जीवन जाना, जिसे जिया
एक दिन सब व्यर्थ हो जाता है, सब छूट जाता है
सिवा आंसू बहाने के कोई उपाय नहीं रह जाता
जो जीवन जीया वह व्यर्थ जीया ...वह जीवन था ही नहीं
बस मृत्यु की ओर निस्सारता की ओर व्यर्थ की भाग-दौड़
जीने वालों की संगति में बैठो
जागे हुओं से पूछो,
जिन्होंने पा लिया और भागदौड़ से बाहर हो गए
उन आप्तजनों से पूछो, वे कहेंगे
जो बाहर के प्रति मरा और भीतर के प्रति जगा
वही जीया !
जो परिधि पर नहीं जीया, वर्त्तुल में चक्कर नहीं लगाता रहा
जो वर्त्तुल से केन्द्र में खिसक गया वही जिया
उसे ही शाश्वत् जीवन का आनंद उपलब्ध हुआ
जिसने न कुछ पकड़ा, न छोड़ा
न ही कोई आसक्ति, निर्मित की, न कोई आग्रह, न कोई बन्धन
वह अस्पर्शित जीता है
'ज्यों की त्यों धर दीन्ही चदरिया'।
यह तुम्हारी संभावना है, इसे पूरा करो
मंदिर-मस्जिद में जाने-न जाने से
धर्म का कोई प्रयोजन नहीं
मंत्र-स्तोत्र रटने से आप धार्मिक नहीं बन जाते
धार्मिक होने के लिये सिर्फ अपनी संभावना खोजें।
सहज समाधि, शून्यावस्था की प्रतीती
समाधि का न तो आदि है, न अंत और न मध्य ही
वहां न जन्म है और न मृत्यु
वह अलौकिक महासुख है
वहां न अन्य का भान रहता है और न अपना ही

यही महासुख की प्राप्ति तुम्हारी संभावना है
सच्चिदानंद का महासुख तुम्हारी विश्रान्ति है
तब तक रुकना मत जब तक समाधि का रसास्वादन न कर लो
जीवन को दांव पर लगा देना; समाधि में जब तक पहुंचना नहीं
तब तक प्राणों में उसकी पुकार, उसकी अन्यतम अभीप्सा जगाए
रखना।
समाधि के जाने बिना जो गया, उसका आना-जाना व्यर्थ हो गया।
समस्याओं में जिएगा जो, समाधि को नहीं जानेगा।
समाधि के पश्चात् कोई समस्या नहीं--
क्योंकि समाधि है- परम समाधान।
सहज योग : साक्षी भाव : मात्र दृष्टा बनकर रहना ही
एक मात्र साधन है समाधि में जाने का
सब कुछ साक्षी के सामने से गुजरता है
बस वह उसका द्रष्टाभर है
उनके प्रति वह आसक्त नहीं होता, कोई आग्रह नहीं पालता
अन्यथा वह साक्षी न रह पाएगा, पात्र बन जाएगा
आपके संस्कार, आपके विचार, आपका मन
ये सब आपके साक्षी के सामने से गुजरते रहेंगे
मगर इनसे अनासक्त, निरपेक्ष रहना होगा
इन्हें आप देखते ही नहीं,
इनके साथ अपना राग-रंग बना लेते हैं--
आसक्ति निर्मित कर ली कि चूके : ध्यान रखना है।
सहज का अर्थ है जो साथ जन्मा
इसे अपने भीतर खोजना है
भीतर ही भीतर अन्वेषण करना है
दिन-रात बहुत-सी चीजें गुजरती हैं
सुख-दुःख, संयोग-वियोग आते और चले जाते हैं
तुम आतिथेय हो और वे अतिथि हैं
सब आते हैं और चले जाते हैं
मगर आप कहीं आते-जाते नहीं, बचे रहते हैं
बस उनमें आसक्त मत होना,
चित्त वृत्तियों से संबंध स्थापित मत करना--
तादात्म्य जोड़ा कि भ्रांति हुई।
बस चित्त की भावदशाओं से तादात्म्य का टूट जाना ही है
साक्षी भाव और तभी समाधि की अनुभूति संभव है।
जीवन में क्रान्ति घटनी प्रारंभ हो जाती है साक्षी भाव से
जिसके भीतर सहज का प्रकाश हो जाए
शून्य के अनुभव में उतर जाये
उसके सारे कर्म अकर्म हो जाते हैं
वह सब करते हुए भी कर्त्तापन से मुक्त हो जाता है
मैं कर्त्ता हूं यह स्वप्न का भाव है
मैं साक्षी हूं यह जागरण की अवस्था है।
परमात्मा का प्रेम विराट है और
इसी विराट प्रेम के कारण वह तटस्थ मालूम पड़ता है
इस विराट प्रेम में परमात्म स्वरूप आत्मज्ञानी पुरुष भी
तटस्थ मालूम पड़ते हैं
साक्षी-भाव के गहन बोध में
चित्त इतना प्रेममय हो जाता है कि
आपके कृत्य में वह बाधा नहीं बनता
परमात्मा के विराट प्रेम के कारण ही मनुष्य की स्वतंत्रता है
अन्यथा उसके अस्तित्व का कोई अर्थ ही नहीं होता
जो संभावना है मनुष्य की
उसे प्राप्त करने की उसे स्वतंत्रता भी है।
परमात्मा तटस्थ मालूम होता है
कि मनुष्य की संभावना का चरम विकास हो सके
अन्यथा बूंद सागर न होती
मनुष्य परमात्मा न हो पाता
आपके भीतर जो अमृत है वह प्रकट नहीं होता
देहधर्मा मनुष्य चिन्मय परमात्मा नहीं हो पाता
प्रभु का परम प्रेम ही उसे अपने में निमज्जित कर
परमात्मा बना लेता है, वह वही हो जाता है।
इसी भावदशा में आपको जीना चाहिए
जैसे ही चित्त विचारों के तरंग से रहित हो जाता है
कुछ कृत्य शेष नहीं रह जाता है और न कोई विचारणा
जीवन शाश्वत है, इसे पहचानना है--
सदा है - शरीर के अंदर भी बाहर भी
ध्यान साक्षी भाव है, कोई कृत्य नहीं
ध्यान एक अंतरावस्था है, जहां चित्त विश्रांत होता है
ध्यान बोध है--
एक जाग्रत अवस्था
आप इसी भाव को, इसी अवस्था को
और इसी बोध के साथ--
आपनी संभावनाओं के चरम विकास को प्राप्त हों।
इन्हीं आशीर्वचनों के साथ इतना ही।

--अवधूत कृपानंदनाथ

१०.२.२०००

अनामा मुख्य आकर्षण

अलौकिक विभूति
कौलेश्वर महायोगी मत्स्येन्द्रनाथ

दुर्गासप्तशती
कवच-सिद्धि एवं उसका उपयोग

तांत्रिक प्रक्रियाः
कुंडलिनी और तंत्र साधना

वेद-वातायन
वेदोपनिषद् की अपौरुषेयता का तात्पर्य

आध्यात्म के स्रोत
तीर्थ, कामाख्याः गुह्यतम सिद्धपीठ

ज्योतिष : काल-सर्प योग
कितना अशुभ, और फिर भी करें क्या ?

आयुर्वेद :
तनाव : महाव्याधि

जीवन शाश्वत है : मृत्यु जीवन का अन्त नहीं